प्रसार दूत

कृषि विज्ञान की अग्रणी पत्रिका

दिसम्बर 2020

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानान्तरण केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012

संपादकीय

साथियो, आप सभी को नववर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ। पिछला वर्ष दुनियाभर के लिए भारी उथल–पुथल वाला रहा। हमने अपने जीवनकाल में कोविड–19 जैसी आपदा का अनुभव पहले कभी नहीं किया था, इसलिए इससे निपटने के लिए कोई तैयारशुदा तरीका मौजूद नहीं था। ऐसी लड़ाई के लिए लंबे धैर्य की जरूरत होती है। हमने बेजोड़ धैर्य का परिचय दिया, किसान खेतों में डटे रहे, मूलभूत सामग्रियों की सप्लाई निर्बाध रही और अब वैक्सीन के आने के बाद कहा जा सकता है कि हम इस आपदा पर काबू पाने की स्थिति में आ गए हैं। तथापि देश को काफी नुकसान उठाना पड़ा है। अनेक व्यक्तियों की मृत्यु हुए, कई बेघर हुए और लाखों लोगों के सामने रोजी रोटी का संकट आ गया। अब हमारा देश धीरे–धीरे संभल रहा है। हमें यह घटना एक दुस्वप्न समझकर भुलाने की नहीं, बल्कि एक अनुभव समझकर याद रखने की जरूरत है, इससे सीखने की जरूरत है।

हाल ही में सरकार ने तीन कृषि कानूनों को लागू किया। इन कानूनों का उद्देश्य कृषि व्यापार के पुराने तौर–तरीकों में बदलाव करना है। हमारी खेती और कृषि उपज के साथ व्यवहार करने के पारंपरिक तरीकों में व्यावसायिकता का अभाव है। अन्य उद्योग धंधों की तुलना में इसमें मुनाफा कम है, जिससे यह धारणा बन गई कि कृषि घाटे का सौदा है, जबकि देश की बहुसंख्यक आबादी इसी पेशे में निर्भर है। संभवतः इसी वजह से पढ़े–लिखे युवा कृषि को एक आकर्षक पेशा नहीं मानते। कुल मिलाकर कृषि को केवल सरकारी एजेंसियों का ही आसरा है, जो मौजूदा जरूरतों को पूरा करने के लिए नाकाफी साबित होती हैं। इन नए लागू हुए कानूनों का उद्देश्य कृषि व्यापार को बढ़ावा देना, उत्पादों और सेवाओं की गुणवत्ता बेहतर बनाना और पूँजी को आकर्षित करने के लिए मार्ग प्रशस्त करना था। परंतु किसानों ने इन कानूनों का खुलकर स्वागत नहीं किया। इसके निर्माण, कार्यान्वयन और भावी दुरुपयोग को लेकर तमाम आशंकाएँ पनपने लगीं।

दरअसल किसानों के मन में जो अविश्वास का भाव है, वह रातों–रात नहीं आया, बल्कि दशकों से धीरे–धीरे जमा हो रहा है। यह भाव किसी भी बदलाव को आशंका की नजर से देखता है। यह समस्या कानून वापस लेने से खत्म नहीं होगी, बल्कि व्यवस्था को संवेदनशील, पारदर्शी और वंचितोन्मुखी बनाने से होगी। सरकार को विश्वास बहाली के लिए ठोस उपाय करने होंगे। आज कृषि का जो स्वरूप दिखाई पड़ता है, वह पिछले सत्तर वर्षों की अथक मेहनत का परिणाम है। वैश्विक बदलाव के साथ–साथ देश में उद्योगों की तरह कृषि में निजीकरण और पूँजी निवेश को बढ़ाना समय की मांग है। हमें भी इसी अनुसार अपने पुराने तौर–तरीकों को बदलना होगा। इसके लिए सरकारों और जनता के बीच समझ और तालमेल भी विकसित करना पड़ेगा।

सरकार कृषि में व्यावसायिकता को बढ़ाने के लिए किसान उत्पादक कंपनियों को प्रोत्साहित कर रही है। इसके योजना के अंतर्गत कंपनी बनाने में पहल करने वाले किसान उत्पादक समूहों को अनेक सहूलियतें दी गई हैं। अनेक प्रकार के कानूनी प्रक्रियाओं को शिथिल और आसान बनाया गया है। यदि यह योजना सच्चे मायनों में लागू हो, तो किसानों की स्थित बदलने की क्षमता रखती है।

साथियो, आपको मालूम ही होगा कि हमारा संस्थान हर वर्ष फरवरी के अंत या मार्च के शुरूआती सप्ताह में भव्य पूसा कृषि विज्ञान मेले का आयोजन करता है। तीन दिनों तक चलने वाले इस उत्सव में देशभर की कृषि से जुड़ी

संस्थाएँ, उद्यमी, वैज्ञानिक और किसान भाग लेते हैं। इस वर्ष भी यह मेला आयोजित किया जाएगा, परंतु कोविड–19 की परिस्थिति को देखते हुए इसका स्वरूप बदल दिया गया है। इसमें प्रौद्योगिकी प्रदर्शन के स्टॉल, जीवंत प्रदर्शन प्लॉट, बीजों की बिक्री, तकनीकी सत्र और गोष्ठियाँ पूर्ववत होंगी, साथ ही इस मेले का सीधा प्रसारण बेवसाइट और यूट्यूब आदि माध्यमों से किया जाएगा, जिससे देशभर के किसान इसमें जुड़ सकेंगे। एक ओर जहाँ कोविड महामारी ने मेले के भौतिक स्वरूप को सीमित किया है, वहीं दूसरी ओर वर्चुअल माध्यमों द्वारा इसकी पहुँच का विस्तार किया है। अब मेले में भाग लेने के लिए आपको दिल्ली आने की आवश्यकता नहीं, बल्कि अपने गाँवों से ही इंटरनेट के माध्यम से इसमें शामिल हो सकते हैं और कृषि चर्चा का लाभ उठा सकते हैं। मेले की तिथियाँ और अन्य जानकारी संस्थान की वेबसाइट पर देखी जा सकती है।

इसी प्रकार हमने इस पत्रिका प्रसार दूत की पहुँच भी विस्तृत कर दी है। इसकी पुरानी और नई प्रतियाँ संस्थान की वेबसाइट पर प्रकाशन के अंतर्गत मौजूद हैं, जिन्हें आप मुफ्त डाउनलोड कर पढ़ सकते हैं। इस अंक में अपने पाठकों को आवश्यक जानकारी प्रदान करने के लिए समसामयिक लेख शामिल किए गए हैं। उम्मीद है यह अंक आपको पसंद आएगा। अपनी प्रतिक्रियाओं के बारे में अवश्य अवगत कराएँ।

संपादक

भाकृअनुप
ICAR

दिसम्बर 2020
प्रसार दूत

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
IARI 1905

वर्ष 25 | 2020 | अंक-4

संरक्षक
डॉ. अशोक कुमार सिंह
निदेशक
डॉ. वी. के. सिंह
कार्यवाहक संयुक्त निदेशक (प्रसार)

प्रधान सम्पादक
डॉ. जे.पी.एस. डबास

सम्पादक
डॉ. एन.वी कुंभारे

सम्पादक मंडल
डॉ. वाई. वी. सिंह
डॉ. अमित गोस्वामी
श्री के. एस. यादव
डॉ. हरीश कुमार
डॉ. वाई. पी. सिंह
श्री आनन्द विजय दुबे

तकनीकी सहयोग
श्री विजय सिंह जाटव
श्री लक्खी राम मीणा
श्री राजेश सिंह

शुल्क और लेख भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता
कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012
फोनः 011–25841039
पूसा एग्रीकॉमः 1800118989 (टोल फ्री)
ई–मेंलः incharge_atic@iari.res.in
वेबसाइटः www.iari.res.in

विषय सूची | पृष्ठ संख्या

सम्पादकीय

1. पछेती गेहूँ की उच्च उत्पादन तकनीकी 01
2. जैव कीटनाशकों से सब्जियों के नाशीकीटों का प्रबंधन 04
3. कृषि प्रधान देश में जैविक खेती का महत्व 09
4. अंगूर की किस्में एवं बेलों में कांट–छाँट की विधियां 15
5. अगेती सब्जी उत्पादन द्वारा किसानो की आय बढ़ाने हेतु नीची प्लास्टिक सुरंग तकनीक 18
6. सरसों की फसल के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन 21
7. आंवले के प्रसंस्कृत उत्पाद एवं उनकी उपयोगिता 24
8. कार्नेशन की पॉलीहाउस में खेती 28
9. दमस्क गुलाब की उन्नत खेती 36
10. भिन्डी की खेती से किसान भाई अधिक मुनाफा कैसे लें? 40
11. पपीते की बागवानी 44
12. शून्य लागत प्राकृतिक खेती 48
13. कृषि में ड्रोन की बढ़ती भूमिका 51

वार्षिक शुल्क ₹ 80/– मनीआर्डर द्वारा | **एक प्रति मूल्य ₹ 20/–**

पछेती गेहूँ की उच्च उत्पादन तकनीकी

कुलदीप सिंह यादव, एन. वी. कुंभार एवं हरीश कुमार

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली–12

गेहूँ बुवाई का सबसे सही समय 5–25 नवम्बर होता है। बहुत अगेती बुवाई के लिए अक्तुबर का अंतिम सप्ताह से नवम्बर का प्रथम सप्ताह होता है। लेकिन जिन क्षेत्रों में धान–गेहूँ फसल चक्र अपनाया जाता है, वहाँ पर गेहूँ की बुवाई करने में देरी हो जाती है। देरी से बुवाई करने की परिस्थिती के लिए जिसके लिए वर्तमान अनेक पछेती प्रजातियाँ उपलब्ध है। जिनकी दिसम्बर के अंतिम सप्ताह तक भी बुवाई करके भरपूर पैदावार ले सकते हैं। इन प्रजातियों को अगेती बुवाई करने पर, इनमें जमाव व कल्लों की संख्या बहुत कम हो जाती है तथा अधिक तापमान होने के कारण प्रति बाली में दाने कम व पिचके हुए प्राप्त होते हैं। विभिन्न अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि अधिक तापमान का प्रभाव आटे के गुणों व उत्पाद की गुणवत्ता पर भी होता है। इसलिए यदि किसान गेहूँ की पछेती बुवाई करके उत्पादन लेना चाहता है तो उच्च तापमान के नकारात्मक प्रभाव को कम करने के लिए पछेती किस्मों के साथ–साथ सस्य और प्रबंधन क्रियाओं का उचित चयन करना चाहिए। पछेती गेहूँ उत्पादन के लिए समय से बोई जाने वाली फसल से कृषि क्रियायें थोड़ी अलग होती हैं। उदाहरणार्थ खेत की तैयारी, उर्वरक, सिंचाई एवं बीज बुवाई, पोषक तत्व प्रबंधन आदि ऐसे प्रबंधन क्रियाएं है जिनके के लिए कुशल तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है।अतः प्रस्तुत आलेख में पछेती गेहूँ उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीक का वर्णन किया गया है।

प्रजातियों का चुनाव व बुवाई का समय

गेहूँ ठंडे मौसम की फसल है। पछेती गेहूँ की प्रजातियों का चुनाव करते समय फसल की अवधि, बुवाई का समय तथा क्षेत्र विशेष के लिए अनुमोदित किस्मों का ही चयन करना चाहिए। ये प्रजातियां कम अवधि, ज्यादा कल्ले, कम और अधिक तापमान को सहनशील होती है। पछेती बुवाई के लिए निम्नलिखित प्रजातियों का चयन करना उचित हैः

उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र हेतु

एच.डी.–3117, एच.डी.–3271, एच.डी.–3059, एच.आई. 1621, पूसा गोल्ड (डब्लू.आर.–544)

उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्र

एच.डी.–3118, एचडी 2985, एचआई 1563

मध्य क्षेत्र

एचडी 2932, एच.डी.–2864

उत्तर–पर्वतीय क्षेत्र

एचडी 490, एचडी 420

प्रायदीपिय क्षेत्र

एचडी 3090, एच.डी.–2932, एच.डी.–2833

बीज

प्रमाणित बीज सदैव भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के विभिन्न संस्थानों अथवा राज्य कृषि विश्वविद्यालय ही से खरीदना चाहिए तथा यदि बीज उपचारित न हो तो उसे थायराम 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर लेना चाहिए। समय से बुवाई हेतु पंक्ति से पंक्ति की दूरी 22.5 सें.मी. रखते है जबकि देर से बुवाई करने पर 18 से 20 सें.मी. दूरी रखनी चाहिए। गेहूँ की पछेती बुवाई का उपयुक्त समय 25 नवम्बर से 31 दिसम्बर के बीच होता है।

बीज की मात्रा

सामान्य अवस्थाओं में ट्रैक्टर चालित सीड–कम–फर्टी ड्रिल से बुवाई करने पर गेहूँ की 100 कि.ग्रा. मात्रा प्रति हेक्टेयर रखते है। जबकि गेहूँ की पछेती बुवाई के उपर्युक्त किस्म का चयन करके 125 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से बीज की मात्रा का प्रयोग करना चाहिए।

भूमि व उसकी तैयारी

गेहूँ की खेती के लिए दोमट मृदा सर्वोत्तम होती है। मटियार और रेतीली मृदाओं में गेहूँ की खेती की जा सकती है। गेहूँ के लिए अधिक भुरभूरी मृदा की आवश्यकता होती है। मृदा को भुरभुरी बनाने के लिए यंत्रों के द्वारा कई बार जुताइयाँ की जाती है। पछेती गेहूँ उत्पादन के लिए खेत की तैयारी करते समय दो बार हैरो से गहरी जुताई करके पाटा लगाना आवश्यक होता है ताकि खेत में नमी संरक्षित की जा सकें, उसके बाद रोटावेटर से एक–दो जुताई करके खेत को बुवाई योग्य बना लेना चाहिए।

बुवाई विधि

अधिकांश किसान गेहूँ की बुवाई छिटक कर या देशी हल से करते हैं। जिससे बीज का जमाव कम होता है क्योंकि बीज उचित गहराई पर नहीं गिरता है। इसलिए ट्रैक्टर चालित सीड कम फर्टी–ड्रिल से ही बुवाई पंक्तियों में करें। छिड़काव विधि से बोए गेहूँ में समय से निराई–गुड़ाई भी संभव नहीं होता है। पछेती प्रजातियाँ कम अवधि वाली होती है जिसके कारण उनमें कल्ले कम बनते हैं।

पछेती बुवाई में जीरो टिलेज एवं हैप्पी सीडर का उपयोग

गेहूँ की बुवाई समय को ध्यान में रखते हुए धान की कटाई के बाद उपलब्ध नमी का उपयोग करते हुए उसी खेत में बिना जुताई किए ट्रैक्टर चालित जीरो सीड ड्रिल कम फर्टीड्रिल तथा हैप्पी सीडर उपकरणों द्वारा सीधे गेहूँ की बुवाई कर सकते हैं। इन यंत्रों द्वारा बुवाई करने से परम्परागत बुवाई विधि की तकनीक की तुलना में 20–25 दिन की बचत होती है और उत्पादन बरकरार रखा जा सकता है। साथ ही खेत की तैयारी पर आने वाली लागत को बचाया जा सकता है।

खाद एवं उर्वरक

रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग बुवाई के समय करना उपयुक्त होता है। इन उर्वरकों में फॉस्फोरस एवं पोटाश धारी उर्वरकों की सम्पूर्ण मात्रा बुवाई के समय संस्थापन विधि से प्रयोग करना अधिक लाभदायक होता है। धान के बाद पछेती गेहूँ उगाने हेतु नत्रजन की 2/3 मात्रा बुवाई के समय पर + 1/3 प्रथम सिंचाई पर प्रयोग करना अच्छा होता है। फसल बुवाई से पूर्व यदि मृदा परीक्षण परिणाम उपलब्ध न हो तो पछेती बुवाई हेतु 80–100 कि.ग्रा. नत्रजन, 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 40 कि.ग्रा. पोटाश की मात्राएं प्रति हेक्टेयर की दर से देनी चाहिए। यदि मिट्टी में जिंक तत्व की कमी, मृदा में पायी जाती है, तो 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर 50–60 कि.ग्रा. मिट्टी में मिलाकर बुवाई से पूर्व खेत में मिला देना चाहिए। खड़ी फसल पर जिंक की कमी के लक्षण दिखाई दे तो 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट के घोल को 0.25 प्रतिशत बिना बुझे चूने के घोल में 3 प्रतिशत यूरिया के घोल में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

जल प्रबंधन

पछेती बुवाई की फसल में सामान्य की अपेक्षा जल्दी–जल्दी सिंचाई करें। ध्यान रहे कि प्रत्येक बार एक सिंचाई में 5 सें.मी. से अधिक जल न लगाया जाये। वर्षा होने पर या अत्यधिक सिंचाई करने पर फसल जल से प्रभावित हो सकती है। इसलिए आवश्यकता से अधिक जल को खेत से बाहर निकाल देना आवश्यक होता है। प्रथम सिंचाई बुवाई के 20–25 दिन बाद दें। इसके बाद 20–22 दिन के अन्तराल पर दूसरी, तीसरी व चौथी सिंचाई करनी चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

गेहूँ की फसल में मडूंसी (फैलेरिस माइनर), जंगली जई, जंगली गाजर, बथुआ, जंगली पालक, गेगला, मुनमुना, चटरी मटरी, कृष्णनील, हिरनखुरी आदि खरपतवारों का अधिक प्रकोप होता है। गेहूँ बुवाई के तीन दिन के अन्दर पेन्डिमेथीलीन की 1000 मि.ली. मात्रा को 500 ली. जल में मिलाकर छिड़काव करने से चौड़ी पत्ती एवं घास वर्गीय खरपतवार नियंत्रित हो जाते हैं। मेट्रिब्यूजिन 175 ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से 500 लीटर जल में घोलकर बुवाई के 25 से 30 दिन के बाद छिड़काव करें। सल्फोसल्फ्यूरान 25 ग्रा. दवा का 250 से 300 लीटर जल में घोलकर प्रति

हेक्टेयर में छिड़काव करें। इनके अतिरिक्त सिंचाई की नालियों तथा मेंड़ों पर खरपतवार विकसित न होने दें तथा बीज बनने से पहले ही इनको नष्ट करें दें तथा पहली निराई–गुड़ाई पहली सिंचाई के बाद उपयुक्त अवस्था पर एवं दूसरी निराई–गुड़ाई, दूसरी सिंचाई के बाद करनी चाहिए।

रोग प्रबंधन

गेहूँ में मुख्यतः गेरुई या रतुआ (रस्ट), कंडुआ या अनावृत्त कण्ड, झुलसा, करनाल बंट ध्वज कण्ड आदि रोगों का प्रकाप अधिक होता है। रस्ट रोग के प्रबंधन हेतु जीनेब (डाइथेन जैड–78) या मीनेब (डाइथेन एम–45) नामक दवा का 0.2 प्रतिशत की दर से जल में घोल बना कर छिड़काव करना चाहिए। कंडुवा रोग की रोकथाम के लिए वीटावैक्स या कारबेन्डाजीम दवा की 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज को उपचारित करें तथा प्रमाणित बीज की रोगरोधी किस्मों को ही उगाना चाहिए। करनाल बंट की रोकथाम के लिए एग्रोसन जी.एन. का बीजोपचार करना चाहिए। झुलसा रोग की रोकथाम हेतु जिनेब का छिड़काव करना चाहिए।

कीट प्रबंधन

गेहूँ में दीमक, तना बेधक, एफिड, सैनिक कीट आदि लगते हैं। गेहूँ में दीमक के नियंत्रण हेतु क्लोरोपाइरीफास की 3 लीटर प्रति हेक्टेयर मात्रा को 300 लीटर जल में घोलकर छिड़काव करें या सिंचाई जल के साथ खेत में दें। तना बेधक के लिए 0.04 प्रतिशत फालीडोल का छिड़काव करें। खेत में चूहे की रोकथाम के लिए जिंक फॉस्फाइड से बने चारे का प्रयोग करें।

हमारे देश में मुख्यतः उत्तरी राज्यों में धान–गेहूँ फसल चक्र अपनाया जाता है, जिसके कारण किसानों को पछेती गेहूँ की खेती करनी पड़ती है। किसान भाईयों को उपरोक्त वैज्ञानिक तकनीक में संस्तुत पछेती किस्मों का चयन करके, प्रति हेक्टेयर सामान्य से 20 प्रतिशत बीज दर अधिक रखते हुए, 18–20 सें.मी. की दूरी पर पंक्तियों में सीड–ड्रिल से बुवाई करनी चाहिएं। पछेती गेहूँ की फसल अवधि कम होने के कारण 20 प्रतिशत उर्वरक कम दें तथा जल्दी–जल्दी सिंचाई करें, तथा खेत को खरपतार मुक्त रखें। यदि किसान भाई उक्त बातों का ध्यान रखकर गेहूँ की पछेती बुवाई करें, तो उन्हें अवश्य आर्थिक लाभ होगा तथा उत्पाद उच्च गुणवत्ता युक्त गेहूँ प्राप्त होगा।

जैव कीटनाशकों से सब्जियों के नाशीकीटों का प्रबंधन

संजीव रंजन सिन्हा, देवजानी डे एवं सुभाष चन्द्र

कीट विज्ञान संभाग

भा.कृ.अनु.प –भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली –1100012

सब्जियों का अपेक्षित उत्पादन न होने का एक मुख्य कारण कीटों और रोगों द्वारा अधिक क्षति होना है। इन कीटों और रोगों के प्रबंध हेतु हमें समय समय पर रासायनिक पीड़कनाशियों का प्रयोग करना पड़ता है जो किसी न किसी प्रकार से मनुष्य को नुकसान पहुंचाता है। सब्जियों में रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग कम करने के लिए जैव कीटनाशकों द्वारा सब्जियों के नाशीकीटों का प्रबंधन किया जा सकता है जो कृषि में कीट नियंत्रण के लिए एक परिस्थितिकी दृष्टिकोण है। ये रासायनिक कीटनाशकों की उपयोगिता में कमी ला सकता है या बिल्कुल खत्म कर सकता है।

सब्जियों के कीटों के प्रबंधन हेतु इन पद्धितियों का अनुकरण करने वाले किसान भाइयों से हम यह आग्रह करेगें कि साप्ताहिक तौर पर कीटों की निगरानी और उनसे क्षति आंकलन करना अत्यन्त आवश्यक है ताकि आवश्यकता पड़ने पर जैव कीटनाशक का छिड़काव तुरन्त करवाया जा सके। इस पद्धिति में परंपरागत् कीट प्रबंधन तकनीकों और अर्न्तफसलों के समावेशों से कीटो से होने वाली क्षति को आर्थिक प्रभाव स्तर से कम किया जा सकता है और आवश्यकता पड़ने पर ही जैव कीटनाशक का छिड़काव कराया जा सकता है।

गोभीवर्गीय सब्जियाँ

बंद गोभी, फूलगोभी, ब्रोकोली आदि मुख्यतः ठंड़े मौसम में उगने वाली गोभीवर्गीय सब्जियां हैं। इन सब्जियों में सबसे ज्यादा नुकसान चेंपे और हीरक पीठ शलभ (डायमंड बैकमाथ या डी. बी. एम) द्वारा होता है। यदि विभिन्न कीटों द्वारा क्षति की पहचान कर ली जाए तो इनके नियंत्रण में आसानी होती है। आजकल तम्बाकू की सुण्डी द्वारा भी काफी नुकसान देखा जा रहा है।

चेंपाः इस कीट के पंखहीन हल्के हरे रंग के शिशु व प्रौढ़ गोभी के पत्तों के नीचे मिलते हैं। यह पत्तियों, पुष्पक्रम तथा तनों से रस चूसकर उन्हें नुकसान पहुँचाते हैं। इस कीट से निकले मीठे चिपचिपे पदार्थ से पत्तों पर काली फफूंदी लग जाती है जो पौधों को खुराक बनाने में बाधा डालती है।

हीरक पीठ शलभ (डायमंड बैकमाथ): सुंडियाँ पत्तियों की निचली सतह को खाकर हानि करती हैं। पत्तों पर सुंडियों के मल के कारण काले फफूँद की बीमारी लग जाती है। अधिक आक्रमण होने पर सुंडियाँ गोभी के फल को भी खाने लगती है।

गोभी की तितली वाली सुंडीः यह सुंडी अधिकतर पत्तों को बाहरी किनारों से खाना शुरू करके अंदर की ओर बढ़ती हैं। अधिक आक्रमण होने पर पत्तों की शिराएं ही शेष रह जाती हैं। पत्तों की खुराक बनाने की शक्ति कम होने से पैदावार घट जाती है।

तम्बाकु की सुंडीः इस कीट की सुंडियाँ मखमल के समान चिकने व काले रंग की होती हैं। सुंडियाँ रात में पत्तों तथा नई बढ़वार को खाती हैं तथा दिन में मिट्टी या पौधों के नीचे छुपी रहती हैं।

कूबड़ कीटः इसे सेमीलूपर भी कहते हैं। इसकी सुंडियाँ कुछ पीलापन लिए हरे रंग की होती हैं व चलने पर कूबड़ सा आकार बना लेती हैं। सुंडियाँ सर्दियों में कई प्रकार की सब्जियों के पत्तों को खाकर इनमें गोलाकार छेद बना देती हैं। अधिक आक्रमण होने पर सुंडियां पौधों को पत्तीविहीन कर देती हैं।

हलूलाः युवा सुंडियाँ पत्तों में सुरंगें बना देती हैं। यह सुरंगें सफेद रंग की होती हैं। यह सुंडियाँ बड़ी होकर पौधे की मुख्य शाखाओं को खत्म कर देती हैं, जिसके कारण पौधे में

गोभी का फूल नहीं बन पाता। यह कीट युवा पौधों पर गंभीर असर करता है तथा नर्सरी का मुख्य कीट है।

रोकथाम

1. मित्र कीटों (लेडी बर्ड बीटिल, सिर्फिड आदि) की बढोत्तरी के लिए मुख्य फसल के चारों तरफ और बीच–बीच में हर 20 लाइनों के बाद बरसीम, धनिया, रिजका या मेथी उगाएं, जिससे चेंपा का प्रभाव कम हो जाता है।
3. चेपे से निगरानी के लिए पीला चिपचिपा पाश (स्टीकी ट्रैप) का प्रयोग करें।
4. हीरक पीठ शलभ/डायमंड बैक माथ (डी०बी०एम०) और तम्बाकू की सुंडियों की निगरानी के लिए पाँच फेरोमोन ट्रैप प्रति हैक्टेयर के दर से लगाएं।
5. फसल की बढ़वार की अवस्था में नीम के अर्क (एन. एस. के. ई.) का 5 प्रतिशत घोल या एज़ाडायरेक्टिन युक्त नीम के तेल (300 पीपीएम) का छिड़काव 5 मिली/लीटर के दर से 15 दिनों के अंतराल पर 2–3 बार करने पर कीटों के प्रकोप में कमी आ जाती है। इसका छिड़काव दोपहर बाद ही करना चाहिए।
6. हीरक पीठ शलभ/डायमंड बैक माथ (डी०बी०एम०) के नियंत्रण के लिए बी०टी० (1 ग्रा./लि.) या बिवेरिया बैसियाना (1 ग्रा./लि.)या वरटीसीलियम लेकैनी 5 एस सी (1 ग्रा./लि.) से छिड़काव करें।
7. एस एल एन. पी. वी. (250 एल. ई/है.) का छिड़काव फूल आने की अवस्था में तम्बाकू की सुंडियों के नियंत्रण के लिए करें।

टमाटर

टमाटर विश्व की एक महत्वपूर्ण फसल है जो लगभग हर देश में उगाई जाती है । जिसने अपने विशेष पोषक मूल्यों की वजह से लोकप्रियता हासिल की है। टमाटर की फसल में मुख्य रूप से फल छेदकों से ही भारी नुकसान होता है।

चने की सुंडी: यह एक बहुभक्षी कीट है जो टमाटर को भारी नुकसान पहुंचाता है। पौधे में फूल आने से पहले के समय में सुंडी कोमल शाखाओं, पत्तियों तथा फूलों को खाती है, जिसके कारण फसल छिद्रित दिखती है। फल लगने के बाद, सुंडी फल में गोल छेद बनाकर अपने शरीर का आधा भाग अंदर घुसाकर फल का गूदा खाती है जिस कारण फल सड़ जाता है।

तम्बाकू की सुंडी: यह भी एक बहुभक्षी कीट है। इसकी सुंडी प्रारंभ में समूह में रहकर पत्तियों की ऊपरी सतह को खुरचकर खाती हैं। पूर्ण विकसित सुंडियाँ पत्तियों को काटकर खाती हैं तथा यह रात के समय में अधिक सक्रिय होती है।

सफेद मक्खी: इसके वयस्क एवं शिशु (निम्फ़) पत्तियों का रस चूस लेते हैं तथा पत्ती मरोड़क मोज़ैक बीमारी फैलाते हैं। छोटे सफेद जीव पत्तियों के नीचे पाए जाते हैं।

लीफ़ माइनर: इसकी मादा पत्तों की शिराओं में छेद करके उनमें अण्डे देती हैं। यह पत्तियों का हरा पदार्थ खाकर उनमें सुरंगे बनाती हैं।

रोकथाम

1 पत्ती मरोड़क प्रतिरोधी किस्म उगायें और बीमारी से ग्रसित पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर दें।

2 टमाटर की रोपाई करने के दौरान प्रत्येक 10–15 पंक्तियों के बाद गेंदे के पौधों की एक कतार की रोपाई करें। ऐसा करने से चने की सुंडी का नियंत्रण होता है।

3 क्षतिग्रस्त फलों को जमीन में गाड़कर नष्ट कर दें।

4 फल छेदक की निगरानी के लिए पाँच फेरोमोन ट्रैप प्रति हैक्टेयर के दर से लगाएं।

5 फल छेदक के प्रकोप से बचने के लिए एज़ाडायरेक्टिन (10000 पीपीएम) का छिड़काव 1–2 ग्रा./ली. या एज़ाडायरेक्टिन युक्त नीम के तेल (50000 पीपीएम) का छिड़काव 0.5 मिली/लीटर के दर से 15 दिनों के अंतराल पर करें।

6 सुंडियों से संबंधित एन.पी.वी. का छिड़काव 250 एल.ई./है. के दर से करें।

7 एक या दो छिड़काव बी. टी.(1 ग्रा./लि.) या

बिवेरिया बैसियाना (1 ग्रा./लि.) का 15 दिनों के अंतराल पर करें।

8 एन. पी. वी. (400 एल. ई/है.) का छिड़काव फल छेदक के प्रकोप से बचने के लिए करें।

9 सफेद मक्खी के प्रकोप से बचने के लिए वरटीसीलियम लेकैनी का प्रयोग 2.0 किलो/हैक्टेयर के दर से करें।

मिर्ची

मिर्ची एक ऐसा खाद्य पदार्थ है जो दुनिया भर में उगाई जाती है, परन्तु इसका सबसे ज्यादा उत्पादन एशियाई देशों में होता है। मिर्ची में कई रसायनिक घटक होते हैं जो रोगों को रोकने और स्वास्थ्य के गुणों को बढ़ावा देने के लिए जाने जाते हैं।

माइटः इसके बच्चे एवं वयस्क दोनों ही हानिकारक हैं जो अपने थूक से पत्तियों पर जाला सा बुनकर हरा पदार्थ खाती रहती हैं। इन जालों में हजारों की संख्या में माइट मिलती हैं। इसके प्रभाव से पत्तियां टेढ़ी भी पड़ जाती हैं और उन पर धब्बे पड़ जाते हैं।

थ्रिप्सः इनके शिशु एवं वयस्क दोनों ही पत्तियों के हरे भाग को खरोंच कर खाते हैं, जिससे पत्तियों पर धब्बे पड़ जाते हैं। यह फूल एवं कोमल तनों का रस भी चूसते हैं। इनके प्रभाव से विषाणु बीमारियां भी मिर्च में फैलती हैं। थ्रिप्स का प्रभाव ऐसे खेतों में अधिक होता हैं जहाँ खेत सूखे होते हैं। इस कीट का प्रकोप सितम्बर से अक्तूबर तक अधिक रहता है।

चेंपाः यह पंखदार तथा पंखविहीन दोनों ही प्रकार के होते हैं। यह पत्तियों, कोमल तनों से हजारों की संख्या में पाए जाते हैं तथा रस चूसकर पौधे को कमजोर कर देते हैं।

फल छेदकः इस कीट की सुंडियां फलों के अन्दर घुसकर उन्हें नष्ट कर देती हैं।

रोकथाम

1. थ्रिप्स से निगरानी के लिए नीला चिपचिपा पाश (स्टीकी ट्रैप) का प्रयोग करें।
2. नीम के अर्क (एन. एस. के. ई.) का 5 प्रतिशत घोल का 2–3 बार छिड़काव करने पर कीटों के प्रकोप में कमी आ जाती है। इसका छिड़काव दोपहर बाद ही करना चाहिए।
3. तम्बाकू की सुंडियों से बचने के लिए बी. टी. का एक या दो छिड़काव 1.5 ग्रा./ली. के दर से 15 दिनों के अंतराल पर करें।

बैंगन

बैंगन मूल रुप से भारत की एक सब्जी है जो सबसे आसानी से उपलब्ध और सस्ती सब्जियों में से एक है। इसको कई लोकप्रिय औषधीय गुणों का अधिकारी माना जाता है और कैंसर, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, बढ़ती उम्र, सूजन और सनायाविक रोगों के लिए एक उपाय के रूप में प्रयोग किया जाता है।

धब्बेदार पत्ती भृंग या हड्डा भृंगः इस कीट के वयस्क एवं ग्रब/शिशु दोनों ही पत्तियों के हरे व मुलायम भाग को खुरचकर उनमें छेद बनाकर खाते हैं। इसके कारण पत्तियों का केवल ढाँचा ही शेष रह जाता है तथा ग्रसित पौधे सूख–कर मर जाते हैं।

प्ररोह एवं फल छेदकः यह कीट बैंगन की फसल का प्रमुख शत्रु है। इसकी सुडीं बैंगन की प्रारंभिक अवस्था से फल अवस्था तक सक्रिय रहती है। बैंगन के पौधे जब 30–40 दिन के होते हैं तभी से इसका प्रकोप आरंभ हो जाता फल अवस्था में यह उनके अन्दर का गूदा खाती है व फलों का बाज़ार मूल्य कम हो जाता है।

फुदकाः यह कीट पत्तियों तथा कोमल टहनियों का रस चूसता है। यह आकार में छोटा तथा हरे रंग का होता इस कीट के प्रभाव से पत्तियां ऊपर मुड़ जाती हैं। अधिक प्रभाव से पत्तियां पीली अथवा भूरी हो जाती हैं। ये कीट तिरछे चलते हैं।

चेंपाः इसके अर्भक एवं वयस्क दोनों ही पत्तियों व ऊपरी टहनियों का रस चूसकर पौधों को हानि पहुँचाते हैं। ये कीट मधु जैसा पदार्थ भी छोड़ते हैं जिससे पत्तियों पर काले रंग का फफूँद लग जाता है जिससे प्रकाश संष्लेषण की क्रिया बाधित हो जाती है।

लाल मकड़ी माइटः इसके शिशु व वयस्क पत्तियों की कोशिकाओं का रस चूसते हैं जिससे पत्तियां पीली पड़कर सूख जाती हैं।

रोकथाम

1 एक ही खेत में लगातार बैंगन की फसल को नहीं लेना चाहिए।

2 अपने क्षेत्र के लिए अनुमोदित जातियों के बीज उगाएं।

3 एपीलेक्ना/हड्डा भ्रंग के अण्डों और ग्रब्स को एकत्रित करके नष्ट कर दें।

4 फल छेदक की निगरानी के लिए फेरोमोन ट्रैप (5 प्रति है.) लगाएं।

5 मकड़ी एवं परभक्षी कीटों के विकास एवं गुणन के लिए मुख्य फसल के बीच–बीच में और चारों तरफ बेबीकॉर्न लगाएं जो बर्ड पर्च का भी कार्य करती है।

6 फल छेदक द्वारा क्षतिग्रस्त प्ररोहों को तोड़कर नष्ट कर दें। इस क्रिया से फल छेदक द्वारा हानि में काफी कमी आ जाती है।

7 एजाडायरेक्टिन युक्त नीम का तेल (300 पीपीएम) का छिड़काव 5 मिली/लीटर का 15 दिनों के अंतराल पर करने पर छेदकों और हड्डा भ्रंग के प्रकोप में कमी आ जाती है।

8 एजाडायरेक्टिन युक्त नीम (10000 पीपीएम) का 2 मिली/लीटर की दर से 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करने पर चेंपा और छेदकों के प्रकोप में कमी करता है।

9 छेदकों के प्रकोप में कमी लाने के लिए मेटाराइज़ियम एनोप्लूसी 1 ग्रा./ली. के दर से छिड़काव करें।

भिन्डी

भिन्डी पूरी तरह से विषैले एवं दुष्प्रभावों रहित, पोषक तत्वों से भरपूर तथा निर्यात करने के लिए आर्थिक महत्व वाली एक सब्जी है। इसे ठंडे देशों में गर्मियों के दौरान और उष्णकटिबंध क्षेत्रों में वर्ष भर उगाया जाता है।

भिन्डी का प्ररोह एवं फल छेदकः इसकी सुंडी चित्तीदार होती है। फल लगने पर उसमें छेद बनाकर अन्दर गूदा खाती है और ग्रसित फल मुड़ जाते हैं और भिण्डी खाने योग्य नहीं रहती है।

भिन्डी का फुदका या तेलाः शिशु एवं वयस्क दोनो ही हानिकारक होते हैं। ये पौधे को पत्तियों की निचली सतह से रस चूसते हैं। इससे ग्रसित पत्तियां पीली पड जाती हैं और अधिक प्रकोप होने पर मुरझाकर सूख जाती हैं। बदली के मौसम में इसका प्रकोप बढ़ जाता है।यह हमेशा तिरछे चलते हैं।

सफेद मक्खीः यह सफेद रंग की छोटी मक्खी होती है तथा पत्तियों का रस चूसती है। यह भिण्डी में 'येलो वेन मोजैक वायरस' फैलाती है जिससे पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। इस बीमारी से पैदावार में काफी कमी आ जाती है और फल खाने योग्य नहीं रह जाता है।

माइटः यह बहुत ही सूक्ष्म लाल रंग के होते हैं। इनके द्वारा फसल की परिपक्वता वाली स्थिति में ज्यादा हानि होती है। यह पौधों की पत्तियों और तनों के ऊपर जाला सा बनाकर उन्हें कमज़ोर कर देते हैं। इनके प्रभाव से पत्तियां टेढ़ी पड़ जाती हैं और उन पर धब्बे पड़ जाते हैं।

रोकथाम

1 अपने क्षेत्र के लिए अनुमोदित और प्रमाणित जातियों के बीज ही प्रयोग में लाएं।

2 अगर संभव हो तो विषाणु प्रतिरोधी किस्में ही प्रयोग में लाएं और रोग ग्रस्त पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर दें।

3 मकड़ी एवं परभक्षी कीटों के विकास एवं गुणन के लिए मुख्य फसल के बीच–बीच में और चारों तरफ बेबीकॉर्न लगाएं जो बर्ड पर्च का भी कार्य करती है।

4 नीम के अर्क (एन. एस. के. ई.) का 5 प्रतिशत घोल का 2–3 बार छिड़काव करने पर कीटों के प्रकोप में कमी आ जाती है। यह छिड़काव दोपहर बाद ही करना चाहिए।

5 चेंपा और सफेद मक्खी के प्रकोप से बचने के लिए एज़ाडायरेक्टिन युक्त नीम (50000पीपीएम) का छिड़काव 0.5 मिली/लीटर के दर से करें।

6 सफेद मक्खी या तना और फल छेदक के प्रकोप से बचने के लिए एज़ाडायरेक्टिन युक्त नीम (300पीपीएम) का छिड़काव 5 मिली/लीटर के दर से करें।

7 फल छेदक की निगरानी के लिए 5 फेरोमोन ट्रैप प्रति हैक्टेयर लगाऐं।

8 छेदक के नियंत्रण के लिए बी०टी० (1–2 ग्रा./ली.) या बिवेरिया बैसियाना (1 ग्रा./ली.) से छिड़काव करें।

इसके अलावा सभी फसलों में बुवाई या रोपाई से पूर्व नीम की खली (250 किग्रा/है) और वर्मीकम्पोस्ट (3–5 टन/है) का प्रयोग करें। ऐसा करने से फसल की बढ़वार की अवस्था में कीटों के प्रकोप में कमी आ जाती है।

खेत की गहरी जुताई करें ताकि कीट और रोग के जीवाणु पक्षियों द्वारा खा लिए जाए अथवा तेज धूप द्वारा नष्ट कर दिए जाए।

व्यापारिक दृष्टि से भारत में टमाटर, बैंगन, गोभी, फूलगोभी, भिण्ड़ी तथा मिर्ची आदि सब्जियाँ महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इस पद्धति द्वारा उगाई गई सब्जियां रसायनिक मुक्त होने के कारण इससे अधिक मूल्य मिलता है।

जैव कीटनाशकों का सब्जियों में प्रयोग (सी आई बी सी द्वारा सिफ़ारिश किए गए जैव कीटनाशक)

फसल	लक्षित कीट	जैव कीटनाशक	मात्रा
भिण्डी	सफेद मक्खी, तना और फल छेदक	नीम (300पीपीएम)	5 मिली/ली
बैंगन	चेंपा, फल छेदक		5 मिली/ली
पत्ता गोभी	एफिड, हीरक पीठ शलभ, कूबड़ कीट		5 मिली/ली
टमाटर	फल छेदक	नीम (10000पीपीएम)	2 मिली/ली
बैंगन	तना और फल छेदक		2 मिली/ली
गोभी	तम्बाकू की सुंडी	नीम (50000पीपीएम)	0.5 मिली/ली
भिण्डी	चेंपा, सफेद मक्खी		0.5 मिली/ली
टमाटर	एफिड, सफेद मक्खी, फल छेदक		0.5 मिली/ली
गोभी	हीरक पीठ शलभ	*बैसिलस थूरीजियनसिस कूसटैकी*	0.5 किलो/हैक्टेयर
गोभी	फल छेदक	*बिवेरिया बैसियाना 5 एस सी*	1 मिली/ली
बैंगन	तना और फल छेदक	*मैटाराइजियम एनोप्लूसी* 1डब्लू पी	2.5–5.0 किलो/हैक्टेयर
टमाटर	सफेद मक्खी	*वरटीसीलियम लेकैनी* 1.50 तरल सूत्रीकरण	2.0 किलो /हैक्टेयर
पत्ता गोभी	हीरक पीठ शलभ	*वरटीसीलियम लेकैनी* 5 एस सी	1 मिली/ली
टमाटर	फल छेदक	एच. ए. एन पी वी 0.43 ए एस	400 एल. ई/है
गोभी	तम्बाकू की सुंडी	एच. ए. एन. पी. वी 0.5 ए एस	250 एल. ई/है

कृषि प्रधान देश में जैविक खेती का महत्व

सुजाता सिंह यादव, विशाल सिंह एवं अंशुल आर्य

पादप रोगविज्ञान विभाग

गोविंद बल्लभ पंत कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर–263145

भा.कृ. अनु.प.–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान–149004

जैविक खेती एक ऐसी पद्धति है, जिसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों तथा खरपतवारनाशियों के स्थान पर जीवांश खाद पोषक तत्वों (गोबर की खाद कम्पोस्ट, हरी खाद, जीवणु खाद आदि) जैव पीड़क नाशियों (बायो–पैस्टीसाईड) व बायो एजैन्ट जैसे क्राईसोपा आदि का उपयोग किया जाता है, जिससे न केवल भूमि की उर्वरा शक्ति लम्बे समय तक बनी रहती है, बल्कि पर्यावरण भी प्रदूषित नहीं होता तथा कृषि लागत घटने व उत्पाद की गुणवत्ता बढ़ने से कृषक को अधिक लाभ भी मिलता है। जैविक खेती वह सदाबहार कृषि पद्धति है, जो पर्यावरण की शुद्धता, जल व वायु की शुद्धता, भूमि का प्राकृतिक स्वरूप बनाने वाली, जल धारण क्षमता बढ़ाने वाली, धैर्यशील कृत संकल्पित होते हुए रसायनों का उपयोग आवश्यकता अनुसार कम से कम करते हुए कृषक को कम लागत से दीर्घकालीन स्थिर व अच्छी गुणवत्ता वाली पारम्परिक पद्धति है। इसीलिए जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिये किसानों को प्रशिक्षण देना महतत्त्वपूर्ण है।

जैविक खेती का उद्देश्य

इस प्रकार की खेती करने का मुख्य उद्देश्य यह है कि रासायनिक उर्वरकों का उपयोग न हो तथा इसके स्थान पर जैविक उत्पाद का उपयोग अधिक से अधिक हो लेकिन वर्तमान में बढ़ती जनसंख्या को देखते हुए तुरंत उत्पादन में कमी न हो अतः इसे (रासायनिक उर्वरकों के उपयोग को) वर्ष प्रति वर्ष चरणों में कम करते हुए जैविक उत्पादों को ही प्रोत्साहित करना है। जैविक खेती का प्रारूप निम्नलिखित प्रमुख क्रियाओं के क्रियान्वित करने से प्राप्त किया जा सकता है। मिट्टी की गुणवत्ता को कायम रखना और प्राकृतिक संसाधनो को बचने के साथ साथ फसलों का उत्पादन भी बढ़ाना है। जिसके लिए निम्न तरीकों को अपनाना चाहिए –

- जीवाणु खादों का प्रयोग।
- फसल चक्र में दलहनी फसलों को अपनाना।
- कार्बनिक खादों का उपयोग।
- मृदा संरक्षण क्रियाएं अपनाना।
- जैविक तरीकों द्वारा कीट व रोग नियंत्रण।
- वातावरण को प्रदूषित मुक्त बनाना।
- मानव स्वास्थय संबंधी बीमारियों को दूर करना।

जैविक खेती के महत्वः

1 फसल अवशेषों को खपाने की समस्या नहीं।

2 भूमि की जलधरणा क्षमता भी बढ़ता है जैविक खेती के कारण किसानों की भूमि की उपजाऊ क्षमता बहुत अधिक बढ़ जाती है और अधिक मात्रा में फसल का उत्पादन होता है। जैविक खेती करने से कम मात्रा मे सिंचाई की जाती है क्योंकि जैविक खेती करने पर मिट्टी नमी बनाए रखती हैं। और भूमि से पानी का वाष्पीकारण कम होता है।

3 जैविक खेती उपयोग करने से खेती के पारिस्थितिकी तंत्र का प्रभाव बना रहता हैं। और फसल चक्र प्रभावित नहीं होता हैं। किसान जैविक खेती से अपनी भूमि को बंजर होने से भी बचाता हैं क्योंकि रासायनिक खेती करने से मिट्टी कम उपजाऊ वाली हो जाती है इसके लिए गाय के मल मूत्र के माध्यम से एवं गाय के गोबर से एक घोल बनाकर खेतों में फेंक दिया जाये। जिससे खेतों की मिट्टी अधिक से अधिक उपजाऊ हो जाती है।

4 जैविक खेती के द्वारा उगाये गए अनाज का मूल्य भी अधिक होता है जिससे किसान को कम लागत में आमदनी में बढ़ोतरी मिलती है। यानी कम लागत में

अच्छा मुनाफा। जो स्वास्थ्य की दृष्टि से भी उत्तम होता है। जैविक खेती का प्रयोग करने से मित्र कीट भी नष्ट नहीं होते है तथा मित्रा कीटों व जीवाणुओं की संख्या मे बढ़ोतरी होती है। जो भूमि की गुणवत्ता में निरंतर सुधार करते रहते हैं।

5 भूमि में नाइट्रोजन स्थिरीकरण बढ़ता हैं। तथा मिट्टी का कटाव भी कम होता है।

6 अनेक बीमारियों से इंसान व पशु–पक्षियों का बचाव होता है।

7 इससे सूक्ष्म तत्वों की कमी पूरी होती है जो फसलों के लिए अति आवश्यक है। शुरूआती समय में उत्पादन में कुछ गिरावट आ सकती है, जो कि किसान सहन नहीं करते है । अतः इस हेतु उन्हें अलग से प्रोत्साहन देना जरूरी है।

8 आधुनिक रासायनिक खेती ने मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवाणुओं को नष्ट कर दिया, अतः उनके पुनः निमार्ण में 3–4 वर्ष लग सकते हैं। जैविक खेती के लिए जैविक खाद की तैयार करने की विधियाँ–

नाडेप

इस विधि को ग्राम पूसर जिला यवतमाल महाराष्ट के नारायम देवराव पण्डरी पाण्डे द्वारा विकसित की गई है। इसलिये इसे नाडेप कहते हैं।

इस विधि में कम से कम गोबर का उपयोग करके अधिक मात्रा में अच्छी खाद तैयार की जा सकती है। टांके भरने के लिये गोबर, कचरा (बायोमास) और बारीक छनी हुई मिटटी की आवश्यकता रहती हैं। जीवांश को 90 से 120 दिन पकाने में वायु संचार प्रक्रिया का उपयोग किया जाता है। इसके द्वारा उत्पादित की गई खाद में प्रमुख रूप से 0.5 से 1.5% नाइट्रोजन, 0.5 से 0.9% फॉस्फोरस एवं 1.2 से 1.4ः पोटाश के अलावा अन्य सूक्ष्म पोषक तत्व भी पाये पाये जाते हैं। निम्नानुसार विभिन्न प्रकार के नाडेप टाकों से नाडेप कम्पोस्ट तैयार किया जा सकता है ।

1 पक्का नाडेप

2 कच्चा नाडेप (भू नाडेप)

3 टटिया नाडेप

बायोगैस स्लरी

बायोगैस संयंत्र में गोबर गैस की पाचन क्रिया के बाद 25 प्रतिशत ठोस पदार्थ रूपान्तरण गैस के रूप में होता है और 75 प्रतिशत ठोस पदार्थ का रूपान्तरण खाद के रूप में होता हैं। जिसे बायोगैस स्लरी कहा जाता हैं दो घनमीटर के बायोगैस संयंत्र में 50 किलोग्राम प्रतिदिन या 18.25 टन गोबर एक वर्ष में डाला जाता है। उस गोबर में 80 प्रतिशत नमी युक्त करीब 10 टन बायोगैस स्लेरी का खाद प्राप्त होता हैं। ये खेती के लिये अति उत्तम खाद होता है। इसमें 1.5 से 2% नाइट्रोजन, 1% स्फुर एवं 1% पोटाश होता हैं।

बायोगैस संयंत्र में गोबर गैस की पाचन क्रिया के बाद 20 प्रतिशत नाइट्रोजन अमोनियम नाइट्रेट के रूप में होता है। अतः यदि इसका तुरंत उपयोग खेत में सिंचाई नाली के माध्यम से किया जाये तो इसका लाभ रासायनिक खाद की तरह फसल पर तुरंत होता है और उत्पादन में 10–20 प्रतिशत बढ़त हो जाती है। स्लरी के खाद में नत्रजन, स्फुर एवं पोटाश के अतिरिक्त सूक्ष्म पोषण तत्व एवं ह्यूमस भी होता हैं जिससे मिट्टी की संरचना में सुधार होता है तथा जल धारण क्षमता बढ़ती है। सूखी खाद असिंचित खेती में 5 टन एवं सिंचित खेती में 10 टन प्रति हैक्टर की आवश्यकता होगी। ताजी गोबर गैस स्लरी सिंचित खेती में 3–4 टन प्रति हैक्टर में लगेगी। सूखी खाद का उपयोग अन्तिम बखरनी के समय एवं ताजी स्लरी का उपयोग सिंचाई के दौरान करें। स्लरी के उपयोग से फसलों को तीन वर्ष तक पोषक तत्व धीरे–धीरे उपलब्ध होते रहते हैं।

वर्मी कम्पोस्ट

केंचुआ कृषकों का मित्र एवं भूमि की आंत कहा जाता हैं। यह सेन्द्रिय पदार्थ ह्यूमस व मिट्टी को एकसार करके जमीन के गड्ढे अंदर अन्य परतों में फैलाता हैं। इससे जमीन पोली होती है व हवा का आवागमन बढ़ जाता है तथा जलधारण क्षमता में बढ़ोतरी होती है। केंचुओं के पेट में जो रसायनिक क्रिया व सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रिया होती है, वर्मी कम्पोस्ट डेढ़ से दो माह के अंदर तैयार हो जाता है। इसमें 2.5 से 3% नाइट्रोजन, 1.5 से 2% स्फुर तथा 1.5 से 2% पोटाश पाया जाता है।

तैयार करने की विधि

कचरे से खाद तैयार किया जाता है उसमें से कांच–पत्थर, धातु के टुकड़े अच्छी तरह अलग कर इसके पश्चात वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने के लिये 10•4 फीट का प्लेटफार्म जमीन से 6 से 12 इंच तक ऊंचा तैयार किया जाता है। इस प्लेटफार्म के ऊपर 2 रद्दे ईट के जोड़े जाते हैं तथा प्लेटफार्म के ऊपर छाया हेतु झोपड़ी बनाई जाती हैं प्लेटफार्म के ऊपर सूखा चारा, 3–4 क्विंटल गोबर की खाद तथा 7–8 क्विंटल कूड़ाकरकट (गार्वेज) बिछाकर झोपड़ीनुमा आकार देकर अधपका खाद तैयार हो जाता है जिसकी 10–15 दिन तक झारे से सिंचाई करते हैं जिससे कि अधपके खाद का तापमान कम हो जाए। इसके पश्चात 100 वर्ग फीट में 10 हजार केंचुए के हिसाब से छोड़े जाते हैं। केचुए छोड़ने के पश्चात् टांके को जूट के बोरे से ढंक दिया जाता हैं, और 4 दिन तक झारे से सिंचाई करते रहते हैं ताकि 45–50 प्रतिशत नमी बनी रहें। ध्यान रखे अधिक गीलापन रहने से हवा अवरूध्द हो जावेगी ओर सूक्ष्म जीवाणु तथा केंचुऐ मर जाऐगें या कार्य नही कर पायेंगे।

45 दिन के पश्चात सिंचाई करना बंद कर दिया जाता है और जूट के बोरों को हटा दिया जाता है। बोरों को हटाने के बाद ऊपर का खाद सूख जाता है तथा केंचुए नीचे नमी में चले जाते है। तब ऊपर की सूखी हुई वर्मी कम्पोस्ट को अलग कर लेते हैं। इसके 4–5 दिन पश्चात पुनः टांके की ऊपरी खाद सूख जाती है और सूखी हुई खाद को ऊपर से अलग कर लेते हैं इस तरह 3–4 बार में पूरी खाद टांके से अलग हो जाती है और आखरी में केंचुए बच जाते हैं जिनकी संख्या 2 माह में टांके में, डाले गये केंचुओं की संख्या से, दोगुनी हो जाती हैं ध्यान रखें कि खाद हाथ से निकालें गैंती, कुदाल या खुरपी का प्रयोग न करें। टांकें से निकाले गये खाद को छाया में सुखा कर तथा छानकर छायादार स्थान में भण्डारित किया जाता है। वर्मी कम्पोस्ट की मात्रा गमलों में 100 ग्राम, एक वर्ष के पौधों में एक किलोग्राम तथा फसल में 6–8 क्विंटल प्रति एकड़ की आवश्यकता होती है। वर्मी वॉश का उपयोग करते हुए प्लेटफार्म पर दो निकास नालिया बना देना अच्छा होगा ताकि वर्मी वॉश को एकत्रित किया जा सके।

हरी खाद

मिट्टी की उर्वरा शक्ति जीवाणुओं की मात्रा एवं क्रियाशीलता पर निर्भर रहती है क्योंकि बहुत सी रासायनिक क्रियाओं के लिए सूक्ष्म जीवाणुओं की आवश्यकता रहती है। जीवित व सक्रिय मिट्टी वही कहलाती है जिसमें अधिक से अधिक जीवांश हो। जीवाणुओं का भोजन प्रायः कार्बनिक पदार्थ ही होते हैं और इनकी अधिकता से मिट्टी की उर्वरा शक्ति पर प्रभाव पड़ता है। अर्थात केवल जीवाणुओं से मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने की क्रियाओं में हरी खाद प्रमुख है। इस क्रिया में वानस्पतिक सामग्री को अधिकांशतः हरे दलहनी पौधों को उसी खेत में उगाकर जुताई कर मिट्टी में मिला देते हैं। हरी खाद हेतु मुख्य रूप से सन, ढैंचा, लोबिया, उड़द, मूंग इत्यादि फसलों का उपयोग किया जाता है।

जैविक पद्धति द्वारा जैविक कीट एवं व्याधि नियंत्रण के कृषकों के अनुभव

जैविक कीट एवं व्याधि नियंजक के नुस्खे विभिन्न कृषकों के अनुभव के आधार पर तैयार कर प्रयोग किये गये हैं, जो कि इस प्रकार हैं–

गौ–मूत्र

गौमूत्र, कांच की शीशी में भरकर धूप में रख सकते हैं। जितना पुराना गौमूत्र होगा उतना अधिक असरकारी होगा। 12–15 मि.ली. गौमूत्र प्रति लीटर पानी में मिलाकर स्प्रेयर पंप से फसलों में बुआई के 15 दिन बाद, प्रत्येक 10 दिवस में छिड़काव करने से फसलों में रोग एवं कीड़ों में प्रतिरोधी क्षमता विकसित होती है जिससे प्रकोप की संभावना कम रहती है।

नीम पत्ती का घोल

नीम की 10–12 किलो पत्तियॉ, 200 लीटर पानी में 4 दिन तक भिगोंयें। पानी हरा पीला होने पर इसे छानकर, एक एकड़ की फसल पर छिड़काव करने से इल्ली की रोकथाम होती है। इस औषधि की तीव्रता को बढ़ाने हेतु बेसरम, धतूरा, तम्बाकू आदि के पत्तों को मिलाकर काड़ा बनाने से औषधि की तीव्रता बढ़ जाती है और यह दवा कई

प्रकार के कीड़ों को नष्ट करने में यह दवा उपयोगी सिद्ध है। नीम की निबोली 2 किलो लेकर महीन पीस लें इसमें 2 लीटर ताजा गौ मूत्र मिला लें। इसमें 10 किलो छांछ मिलाकर 4 दिन रखें और 200 लीटर पानी मिलाकर खेतों में फसल पर छिड़काव करें।

नीम की खली

जमीन में दीमक तथा व्हाइट ग्रब एवं अन्य कीटों की इल्लियाँ तथा प्यूपा को नष्ट करने तथा भूमि जनित रोग विल्ट आदि के रोकथाम के लिये किया जा सकता है। 6–8 क्विंटल प्रति एकड़ की दर से अंतिम बखरनी करते समय कूटकर बारीक खेम में मिलावें।

आइपोमिया (बेशरम) पत्ती घोल

आइपोमिया की 10–12 किलो पत्तियॉ, 200 लीटर पानी में 4 दिन तक भिगोंये। पत्तियों का अर्क उतरने पर इसे छानकर एक एकड़ की फसल पर छिड़काव करें इससे कीटों का नियंत्रण होता है।

मटठा

मट्ठा, छाछ, मही आदि नाम से जाना जाने वाला तत्व मनुष्य को अनेक प्रकार से गुणकारी है और इसका उपयोग फसलों मे कीट व्याधि के उपचार के लिये लाभप्रद हैं। मिर्ची, टमाटर आदि जिन फसलों में चुर्रामुर्रा या कुकड़ा रोग आता है, उसके रोकथाम हेतु एक मटके में छाछ डालकर उसका मुॅह पोलीथिन से बांध दें एवं 30–45 दिन तक उसे मिट्टी में गाड़ दें। इसके पश्चात् छिड़काव करने से कीट एवं रोगों से बचत होती । 100–150 मि.ली. छाछ 15 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करने से कीट–व्याधि का नियंत्रण होता है। यह उपचार सस्ता, सुलभ, लाभकारी होने से कृषकों मे लोकप्रिय है।

मिर्च / लहसुन

आधा किलो हरी मिर्च, आधा किलो लहसुन पीसकर चटनी बनाकर पानी में घोल बनायें इसे छानकर 100 लीटर पानी में घोलकर, फसल पर छिड़काव करें। 100 ग्राम साबुन पावडर भी मिलाऐं। जिससे पौधों पर घोल चिपक सके। इसके छिड़काव करने से कीटों का नियंत्रण होता है।

लकड़ी की राख

1 किलो राख में 10 मि.ली. मिट्टी का तेल डालकर पाउडर का छिड़काव 25 किलो प्रति हेक्टर की दर से करने पर एफिडस एवं पंपकिन बीटल का नियंत्रण हो जाता है।

ट्राईकोडर्मा

ट्राईकोडर्मा एक ऐसा जैविक फफूंद नाशक है जो पौधों में मृदा एवं बीज जनित बीमारियों को नियंत्रित करता है। बीजोपचार में 5–6 ग्राम प्रति किलोगाम बीज की दर से उपयोग किया जाता है। मृदा उपचार में 1 किलोग्राम ट्राईकोडर्मा को 100 किलोग्राम अच्छी सड़ी हुई खाद में मिलाकर अंतिम जुताई के समय प्रयोग करें। कटिंग व जड़ उपचार– 200 ग्राम ट्राईकोडर्मा को 15–20 लीटर पानी में मिलाये और इस घोल में 10 मिनिट तक रोपण करने वाले पौधों की जड़ों एवं कटिंग को उपचारित करें। 3 ग्राम ट्राईकोडर्मा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 10–15 दिन के अंतर पर खड़ी फसल पर 3–4 बार छिड़काव करने से वायुजनित रोग का नियंत्रण होता है।

इल्ली नियंत्रण

1 5 लीटर देशी गाये के मट्ठे में 5 किलो नीम के पत्ते डालकर 10 दिन तक सड़ायें, बाद में नीम की पत्तियों को निचोड़ लें। इस नीमयुक्त मिश्रण को छानकर 150 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ के मान से समान रूप से फसल पर छिड़काव करें। इससे इल्ली व माहू का प्रभावी नियंत्रण होता है।

2 5 लीटर मट्ठे में , 1 किलो नीम के पत्ते व धतूरे के पत्ते डालकर, 10 दिन सड़ने दे। इसके बाद मिश्रण को छानकर इल्लियों का नियंत्रण करें।

3 5 किलो नीम के पत्ते 3 लीटर पानी में डालकर उबाल ले तब आधा रह जावे तब उसे छानकर 150 लीटर पानी में घोल तैयार करें। इस मिश्रण में 2 लीटर गौ–मूत्र मिलावें। अब यह मिश्रण एक एकड़ के मान से फसल पर छिड़के।

4 1/2 किलो हरी मिर्च व लहसुन पीसकर 150 लीटर पानी में डालकर छान ले तथा एक एकड़ में इस घोल का छिड़काव करें।

5 मारूदाना, तुलसी (श्यामा) तथा गेदें के पौधे फसल के बीच में लगाने से इल्ली का नियंत्रण होता हैं।

6 टिन की बनी चकरी खेतों में लगाने से भी इल्लियां गिर जाती हैं।

दीमक नियंत्रण

मक्का के भुट्टे से दाना निकलने के बाद, जो गिण्डीयॉ बचती है, उन्हे एक मिट्टी के घड़े में इक्टठा करके घड़े को खेत में इस प्रकार गाढ़े कि घड़े का मुंह जमीन से कुछ बाहर निकला हो। घड़े के ऊपर कपड़ा बांध दे तथा उसमें पानी भर दें। कुछ दिनों में ही आप देखेगें कि घड़े में दीमक भर गई है। इसके उपरांत घड़े को बाहर निकालकर गरम कर लें ताकि दीमक समाप्त हो जावे। इस प्रकार के घड़े को खेत में 100–100 मीटर की दूरी पर गड़ाए तथा करीब 5 बार गिण्डीयॉ बदलकर यह क्रिया दोहराएं। खेत में दीमक समाप्त हो जावेगी।

सुपारी के आकार की हींग एक कपड़े में लपेटकर तथा पत्थर में बांधकर खेत की ओर बहने वाली पानी की नाली में रख दें। उससे दीमक तथा उगरा रोग नष्ट हो जावेगा।

उगरा नियंत्रण

लीटर मट्ठे में चने के आकार के 3 हींग के टुकडे मिलाकर उससे चने का बीजोपचार कर तत्पश्चात बुवाई करें। सोयाबीन, उड़द, मूंग एवं मसूर के बीजों को अधिक गीला न करें। 400 ग्राम नीम के तेल में 100 ग्राम कपड़े धोने वाला पावडर डालकर खूब फेंटे, फिर इस मिश्रण में 150 लीटर पानी डालकर घोल बनावें। यह एक एकड़ के लिए पर्याप्त है।

ध्यान देने योग्य बातें

खेत में खाद डालकर शीघ्र ही मिट्टी में मिला देना चाहिए। ढेरियों को खेत में काफी समय छोड़ने से नाइट्रोजन की हानि होती है जिससे खाद की गुणवत्ता में कमी आती है। गोबर की खाद में नाइट्रोजन की मात्रा कम होती है और उसकी गुणवत्ता बढ़ाने के लिए अनुसंधान कार्यों से कुछ विधियां विकसित की गई हैं। जैविक खाद में फास्फोरस की मात्रा बढ़ाने के लिए रॉक फास्फेट का प्रयोग किया जा सकता है। 100 किलाग्राम गोबर में 2 किलोग्राम रॉक फास्फेट आरम्भ में अच्छी तरह मिलाकर सड़ने दिया जाता है। तीन महीने में इस खाद में फास्फोरस की मात्रा लगभग 3 प्रतिशत हो जाती है। इस विधि से फास्फोरस की घुलनशीलता बढ़ती है और विभिन्न फसलों में रासायनिक फास्फोरस युक्त खादों का प्रयोग नहीं करना पड़ता। अगर खाद बनाते समय केंचुओं का प्रयोग कर लिया जाए तो यह जल्दी बनकर तैयार हो जाती है और इस खाद में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है। खाद बनाते समय फास्फोटिका का एक पैकेट व एजोटोबैक्टर जीवाणु खाद का एक पैकेट एक टन खाद में डाल दिया जाए तो फास्फोरस को घुलनशील बनाने वाले जीवाणु व एजोटोबैक्टर जीवाणु पनपते हैं और खाद में नत्रजन व फास्फोरस की मात्रा आधिक होती है। इस जीवाणुयुक्त खाद के प्रयोग से पौधों का विकास अच्छा होता है। इस तरह वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके अच्छी गुणवत्ता वाली जैविक खाद बनाई जा सकती है जिसमें ज्यादा लाभकारी तत्व उपस्थित होते हैं। इसके प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाई जा सकती है। जैविक खाद किसानों के यहां उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग से आसानी से बनाई जा सकती है। रासायनिक खादों का प्रयोग कम करके और जैविक खाद का अधिक से अधिक प्रयोग करके हम अपने संसाधनों का सही उपयोग कर कृषि उपज में बढ़ोत्तरी कर सकते हैं और जमीन को खराब होने से बचाया जा सकता है।

जैविक खेती के मार्ग में बधाए

1 भूमि संसाधनों को जैविक खेती से रासायनिक में बदलने में अधिक समय नहीं लगता लेकिन रासायनिक से जैविक में जाने में समय लगता है।

2 शुरूआती समय में उत्पादन में कुछ गिरावट आ सकती है, जो कि किसान सहन नहीं करते है । अतः इस हेतु उन्हें अलग से प्रोत्साहन देना जरूरी।

3 आधुनिक रासायनिक खेती ने मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवाणुओं का नष्ट कर दिया, अतः उनके पुनः निमार्ण में 3–4 वर्ष लग सकते हैं।

प्रमुख बिंदु

1 सिक्किम वर्ष 2016 में भारत का पहला पूर्ण जैविक राज्य बना। उसे जैविक राज्य का दर्जा अपनी लगभग 75,000 हेक्टेयर कृषि भूमि पर जैविक प्रथाओं एवं जैविक कृषि पद्धतियों को अपनाने से प्राप्त हुआ है। सिक्किम में रासायनिक कीटनाशकों, उर्वरकों या आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों का कोई उपयोग नहीं किया जाता है। सिक्किम में इस मिशन की शुरुआत और सफलता के लिये कई कारक विद्यमान थे, जैसे कि इसके लिये बुनियादी आवश्यकताओं को प्राप्त करना। जैविक कृषि की शुरुआत एवं विकास के लिये सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य किसानों को प्रशिक्षित करना है।

2 इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ ऑर्गेनिक एग्रीकल्चर मोमेंट के अनुसार, जैविक कृषि को अपनाने वाले देशों की सूची में भारत का नौवाँ स्थान है।

3 जैविक कृषि को अपनाने के लिये किसानों को प्रशिक्षित करना कई प्रकार से लाभकारी हो सकता है। जैविक कृषि पद्धति को अपनाने से यह कृषि में कीटनाशकों के उपयोग को कम कर देगा जिससे खेतों में काम करने वाले लोगों पर भी इसका नकारात्मक प्रभाव बहुत कम पड़ेगा।

4 कृषि उपज की गुणवत्ता की निगरानी करने और किसानों को समय–समय पर सलाह देने के लिये कृषि क्षेत्र में कृषिविदों को तैनात किया जाना चाहिये।

5 भारत सरकार के नेशनल सेंटर फॉर ऑर्गेनिक फार्मिंग और भागीदारी गारंटी योजना जैसे प्रमाणन कार्यक्रम अनिवार्य रूप से शुरू किये जाने की आवश्यकता है।

अंगूर की किस्में एवं बेलों में कांट–छाँट की विधियां

महेंद्र कुमार वर्मा, विश्व बंधू पटेल तथा अरविन्द

फल एवं औद्यानिक प्रौद्योगिकी संभाग
भा.कृ.अनु.पं–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

अंगूर भारतवर्ष का एक प्रमुख फल है, जिसकी खेती उष्ण, उपोष्ण एवं शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में की जाती है। आज भारत में करीब 1,12,000 हैक्टेयर क्षेत्रफल में अंगूर की खेती की जा रही है, जिसमें 85 प्रतिशत भाग उष्ण, 10 प्रतिशत उपोष्ण कटिबंधीय व 5 प्रतिशत शीतोष्ण क्षेत्रों में पाया जाता है। उत्तरी भारत में व्यावसायिक स्तर पर अंगूर की खेती 1970 से शुरू हुई। पिछले चार दशकों में यह पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों एव मिजोरम में खेती की जा रही है। उत्तर भारत में उगाए जाने वाले अंगूर की सस्य क्रियाएं देश के प्रमुख राज्य जैसे महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश व तमिलनाडु से काफी भिन्न है। इन क्षेत्रों में अंगूर की बेल निरंतर बढ़वार देती है, परन्तु उत्तर भारत में यह चार माह के लिए सुषुप्त अवस्था में चली जाती हैं, अतः सिर्फ एक फसल ही प्राप्त की जाती है। भारत में जून माह में ताजा अंगूर सिर्फ उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों से ही प्राप्त किए जा सकते है। अतः इन क्षेत्रों में उगाए जाने वाले अंगूर अपने–आप में महत्वूपर्ण है। अतः वैज्ञानिक विधि से अंगूर की खेती उत्पादकता एवं दानों की गुणवत्ता में सुधार लाया जा सकता है तथा मुनाफा कमाया जा सकता है।

अंगूर के दानों के बढ़वार के लिए गर्म, शुष्क व दीर्घ ग्रीष्म ऋतु अनुकूल रहती है। दानों के पकने के समय मानसूनी वर्षा या बादल का आना उत्पादन में बहुत क्षति पहुंचाते हैं। इससे दानों का फटना, गुणवत्ता में कमी व गलन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। अतः किसानों को उत्तर भारत में सिर्फ शीघ्र पकने वाली किस्में ही लगानी चाहिए।

सुधरी किस्में: उत्तर भारत में उगाए जाने वाली किस्मों के चयन एवं उनके विकास व विस्तार में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ने विशेष योगदान दिया है। इसमें किस्मों का विकास, सस्य तकनीकों का मानकीकरण, वृद्धि नियामकों का उपयोग, आदि भी शामिल हैं। उपोष्ण क्षेत्रों में उगाए जाने वाले मुख्य किस्मों के गुण नीचे दिए गए हैं।

ब्यूटी सीडलेसः मूलतः कैलिफोर्निया (यू.एस.ए.) से आयातित किस्म जिसे आंकलन के बाद व्यावसायिक स्तर पर उगाने के लिए सिफारिश की गई। यह एक शीघ्र पकने वाली किस्म है। इसके गुच्छे मध्यम आकार, दाने सरस, छोटे या मध्यम आकार के होते हैं। गूदा मुलायम एवं हल्का अम्लीय होता है। इस किस्म में कुल घुलनषील शर्करा (टी.एस.एस.) 18–19 प्रतिशत है। यह किस्म मध्य जून तक पकती है। तत्काल खाने या पेय बनाने के लिए भी उपयुक्त किस्म है।

पर्लेटः यह भी कैलिफोर्निया से आयातित किस्म है। वर्तमान समय में उत्तर भारत में करीब 80 प्रतिशत क्षेत्रफल अकेले इस किस्म के अधीन है। यह एक बीज रहित, शीघ्र पकने वाली किस्म है। इसके गुच्छे मध्यम से लम्बे, दाने सरस, हरा, मुलायम गूदा व पतले छिलका वाला होता है। इस किस्म की कुल घुलनषील शर्करा 18–20 प्रतिशत तक पाई जाती है। यह किस्म जून के प्रथम सप्ताह में पकना शुरू होती है।

पूसा सीडलेसः यह एक थॉमसन सीडलेस किस्म से चयनित किस्म (क्लोन) हैं। यह जून के मध्य से तीसरे सप्ताह तक पकता है। गुच्छे मध्यम, लम्बे, बेलनाकार, सुगंधयुक्त एवं गठे हुए होते हैं। फल छोटे व अण्डाकार होते है तथा पकने पर पीले सुनहरे रंग के हो जाते हैं। फल खाने तथा किशमिश बनाने के योग्य होते हैं।

पूसा उर्वशी (हूर x ब्यूटी सीडलेस): यह एक शीघ्र पकने वाली किस्म है। जिसके गुच्छे कम गठीले एवं मध्यम आकार के होते हैं। दाने बीजरहित एवं हरापन लिए पीले रंग के होते हैं। यह ताजा खाने एवं किशमिश बनाने के लिए उत्तम किस्म है। फलों में घुलनशील ठोस तत्व करीब

20–22 प्रतिशत तक पाई जाती है। यह किस्म बीमारियों के प्रति प्रतिरोधी है तथा उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में जहां मानसून की पहले छुट–पुट वर्षा की समस्या है, उगाए जाने के लिए अति उपयुक्त है।

पूसा नवरंग (मेडीलाइन एंजीवाइन x रूबीरेड): यह एक टेनटुरियर संकर किस्म है जिसमें गूदा, छिलका व रस गाढ़े लाल रंग के होते हैं। यह शीघ्र पकने वाली एवं काफी उपज देने वाली किस्म है। इसके गुच्छे मध्यम आकार, फल बीज गोलाकर एवं गाढे काले लाल रंग के होते हैं। यह किस्म रंगीन पेय व मदिरा बनाने के लिए उपयुक्त है। यह ऐन्थ्रक्नोज रोग के प्रतिरोधी तथा पूर्व मानसून के आगमन पर दाने नहीं के बराबर फटते हैं। औषधीय गुणों से भी यह किस्म परिपूर्ण है।

पूसा अदिति : यह एक शीघ्र पकने वाली बीजरहित किस्म है।

पूसा त्रिसार : यह एक बीज रहित शीघ्र पकने वाली किस्म है।

पंजाब मैक्स पर्पल : यह एक रंगीन पेय व मदिरा बनाने योग्य किस्म है।

फ्लेम सीडलेसः यह एक कैलीफोर्निया से आयतित किस्म है। यह उत्तर भारत में उगाने के लिए उपयुक्त किस्म है। यह एक ओजस्वी, अधिक उपज वाली, लाल व गुलाबी दाने वाली किस्म है। दाने स्वादयुक्त (22–23 प्रतिशत मिठास) एवं आकर्षक होते हैं।

सधाई (ट्रेनिंग) की विधि एवं कांट–छांटः अंगूर में लगातार फसल लेने के लिए उन्हें उचित सधाई एवं काट–छांट की जाती है। अतः बेलों को अनचाहें भाग को काटकर सधाई कर सकते हैं जिससे बेलों में बढ़वार व उत्पादन के लिए तैयार हो पाते हैं। अंगूर की बेल साधने के लिए शीर्ष (हैड), पण्डाल (बॉवर), टेलीफोन, निफिल, वाई ट्रेलिस इत्यादि विधियां प्रचलित है। व्यावसायिक स्तर पर पण्डाल व शीर्ष पद्धतियां ही प्रचलित है। एक पण्डाल विधि से बेलों को साधने के लिए 2.1 से 2.5 मीटर ऊंचाई पर कंक्रीट के खम्बों के सहारे तारों का जाल बनाकर बेलों को फैलाया जाता है। इस विधि में दो विपरीत दिशाओं में पार्श्व शाखाओं को विकसित किया जाता है। इन पर 8 से 10 तृतीयक शाखाएं विकसित की जाती है जिन पर फल लगते हैं। बेलों में निरन्तर काट छांट करते रहनी चाहिए। जिससे वे तारो के जाल पर पूरी तरह से फैल जाए। शीर्ष विधि में मुख्य तने को 90 से 1.20 मीटर ऊंचाई पर काट देते हैं। इन पर तब 8–14 द्वितीयक विभिनन दिशाओं में फैलाते हैं। यह सधाइ की सबसे सस्ती विधि है।

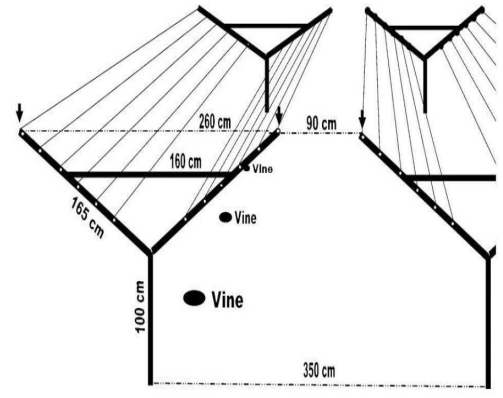

आंकड़ा 1. एक्सटेंडेड वाई त्रेलीस के आयाम

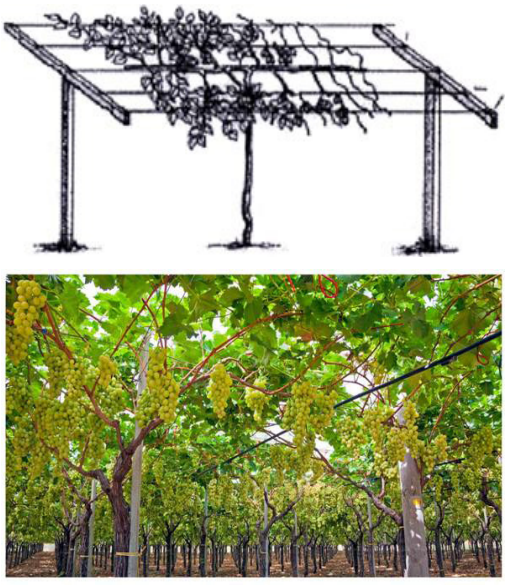

आंकड़ा 2. बहु प्रचलित अंगूर की सधाई की विधि

पश्चिम एवं दक्षिण राज्यों में अंगूर को वाई ट्रेलिस पर सधाई कर रहे हैं। मुख्य तने की ऊंचाई 120–150 सेमी. रखकर दो शाखाओं के 100–110 डिग्री कोण में लोहे की छड़ को 'वाई' आकार में बनवाकर पेंच लगाते है। इन दोनों छड़ों पर 60–70 सेमी. की दूरी पर तीन–तीन छेदकर तार फैलाते हैं। इस विधि में बेल अधिक खुली एवं फैली होती है, जिससे फलोत्पादन एवं दानों की गुणवत्ता सुधारने में सहायक होती हैं।

सधाई प्रक्रिया करीबन दो से तीन चरणों में तैयार होती है। छंटाई के लिए सुषुप्त अवस्था में बेलों को कैंची (सिकेटियर) के द्वारा की जाती है। छंटाई की प्रक्रिया में जिस भाग पर फल लगे हों उन्हें किस्म के ओजस्व के आधार पर सीमित गांठों तक काट देते हैं। सधाई विधि के आधार पर बेलों की छंटाई होती है। सभी किस्मों के बेलों पर 'रिनिवल स्पर' (दो गांठ) व 'केन' (4 या अधिक) के आधार पर काटते हैं। प्रत्येक वर्ष 'रिनिवल स्पर' व 'केन स्पर' बेलों पर छोड़ते है। छंटाई के तुरन्त बाद बलाईटॉक्स (0.2 प्रतिशत) या बावस्टिन का छिड़काव करना चाहिए। किस्मों में छंटाई का ब्यौरा नीचे सारणी–1 में दी गई है।

सारणी–1: उत्तर भारत की प्रमुख किस्मों का छंटाई ब्यौरा

किस्म	गांठों की संख्या
ब्यूटी सीडलेस	2–3
पर्लेट	3–4
पूसा सीडलेस	10–12
पूसा उर्वषी, पूसा अदिति, पूसा त्रिसार	4–6
पूसा नवरंग	4–6
फ्लेम सीडलेस	6–8
पंजाब मैक्स पर्पल	6–8

उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में अंगूर के खेती में की जाने वाली वार्षिक सस्य क्रियाएं

जनवरी के प्रथम से द्वितीय सप्ताह तक: परिपक्व बेलों की कुशल छंटाई व नवविकसित बेलों की सधाई छंटाई उपरांत डॉमेक्स अथवा थायोयूरिया का छिड़काव। सड़ी गोबर की खाद को डालना।

जनवरी के तीसरे से चौथे सप्ताह तक: प्रत्येक बेलों में उर्वरकों की पहली खेप का डालना व मिलाना। तुरन्त सिंचाई की व्यवस्था (सारणी देखें)। मुख्य तना पर छाल को उतारकर बोर्डोपेस्ट लगा देना चाहिए।

अप्रैल के पहले सप्ताह: फलों के बढ़वार के लिए पोटेशियम सल्फेट द्वारा उर्वरीकरण।

अप्रैल के दूसरे सप्ताह से तीसरे सप्ताह तक: उर्वरकों की अन्तिम खेप देना व नियमित सिंचाई। नियामकों का उपयोग।

मई के अन्तिम सप्ताह से जून के अन्त तक: सिंचाई में नियंत्रण एवं मानसूनी वर्षा से बचने के लिए फफूंदनाशक का छिड़काव (बावस्टीन 2 प्रतिशत)

जुलाई–अगस्त–सितम्बर: नियमित सिंचाई, रोग एवं कीट का नियंत्रण।

नवम्बर–दिसम्बर: फफूंदनाशक (बावस्टीन का एक से दो छिड़काव)। सिंचाई को 2 महीने रोका जाना।

अगेती सब्जी उत्पादन द्वारा किसानो की आय बढ़ाने हेतु नीची प्लास्टिक सुरंग तकनीक

पी के सिंह, सेल्वाकुमार आर एवं जूगेन्दर कुमार
संरक्षित कृषि प्रौद्योगिकी केंद्र, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली–12

सब्जी उत्पादक किसान अक्सर बाजार लाभ प्राप्त करने के लिए चयनित सब्जियों के अगेती उत्पादन के लिए उगने के समय में बदलाव कर बे–मौसमी उत्पादन लेते है उदहारण के तौर पर खरबूजा, टिंडा, ककड़ी, खीरा, करेला, जुकुनि आदि। अगर ये सब्जियां सामान्य मौसम की तुलना में एक या आधा महीने पहले बाजार में उपलब्ध होती हैं तो उसका मनचाहा बाजार मूल्य प्राप्त होता है। नदी के किनारे दियारा खेती द्वारा कद्दू वर्गीय फसलों के बे–मौसमी उत्पादन की हमारे देश की पुरानी पद्धति है लेकिन इस खेती हेतु सीमित स्थान उपलब्ध है। इस तरह कुछ कद्दू वर्गीय फसलों को जल्दी तुड़ाई हेतु इन फसलों को जल्दी जनवरी से मध्य फरवरी में कम लागत वाली संरक्षित संरचना जैसे प्लास्टिक की नीची सुरंग या पंक्ति कवर के अंदर लगाया जाता है।

चित्र1: नीची प्लास्टिक सुरंगो में बेमौसमी कद्दू वर्गीय फसल

इस तरह की नीची प्लास्टिक सुरंगों में बे–मौसमी खरबूजा, तरबूज, टिंडा, छप्पन कद्दू, जुकुनि आदि फसलें अमेरिका, इसराइल एवं अन्य यूरोपीय देशो में आम तौर पर उगाई जाती है एवं बाजार में इनकी अच्छी कीमत प्राप्त की जाती है।

ये नीची प्लास्टिक सुरंगें लचीली पारदर्शी आवरण हैं जो सर्दियों के मौसम में खुले मैदान में पौधों के चारों ओर हवा को गर्म करके पौधे बढ़ाने के लिए प्रत्यारोपित सब्जी की पंक्तियों या अलग अलग क्यारिओं में लगाई जाती है। ये मिटटी को भी गरम कर सकते है और पौधे को ओला, ठंडी हवा की मार से बचा सकते है और सामान्य मौसम की तुलना में फसल को 30–45 दिन अगेती पैदा करने में मदद देते हैं।

उत्तर भारत के सब्जी उत्पादकों के लिए कद्दू वर्गीय सब्जी फसलों को जल्दी उगाने हेतु यह एक कम लागत वाली सरल, सुलभ कामयाब एवं फायदेमंद तकनीक है जिसकी मदद से खरबूजा ,तरबूज, टिंडा, ककड़ी, खीरा, करेला, जुकुनि आदि फसलें सफलता पूर्वक सामान्य समय से 30–45 दिन पहले उत्पादित की जाती है

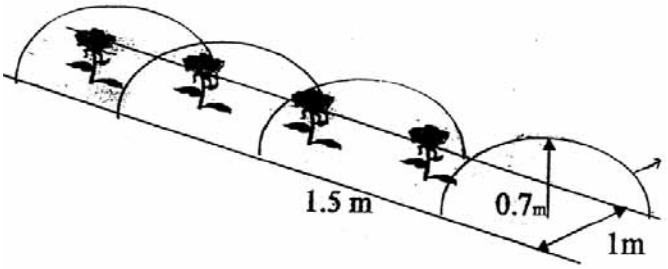

चित्र 2: नीची प्लास्टिक सुरंगो में बेमौसमी कद्दू वर्गीय फसल हेतु स्केच

खरबूजा नीची प्लास्टिक सुरंगों में लगाने हेतु सबसे अधिक उपयुक्त फसल है क्योंकि यह फसल मिट्टी एवं हवा के कम तापमान के प्रति काफी संवेदनशील है

प्लास्टिक की निचली सुरंगों के तहत कद्दू वर्गीय सब्जी फसलों की बेमौसमी खेती के लिए विभिन्न चरणों में नर्सरी उत्पादन, क्यारियां बनाना, पौध रोपण, रोपित फसल को नीची प्लास्टिक सुरंगों से ढकना, रोपण के बाद की देखभाल, परागण, प्लास्टिक सुरंग का हटाना और फसल की तुड़ाई करना शामिल है।

बेमौसमी कद्दू वर्गीय सब्जी फसलों की खेती के लिए नर्सरी उत्पादन

इच्छित कद्दूवर्गीय फसल की पौध प्लास्टिक प्रो ट्रे में नर्सरी ग्रीनहाउस में मृदा रहित माध्यम में दिसंबर या जनवरी के महीने में फसलानुसार उगाई जाती है, और 30– 32 दिन पुराने चार पत्ती के पौधे को पंक्ति कवर या प्लास्टिक की नीची सुरंगों में खुले खेत में मध्य– जनवरी से फरवरी के पहले सप्ताह तक रोपित किया जाता है। जब देश के उत्तरी भाग में रात का तापमान बहुत कम होता है तब उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में समर स्क्वैश (छप्पन कद्दू) की फसल को दिसंबर के प्रथम से द्वितीय सप्ताह में भी प्रत्यारोपित किया जा सकता है, जबकि खरबूजा एवं तरबूज जनवरी के अंत से फरवरी के प्रथम सप्ताह तक रोपित किये जा सकते हैं।

क्यारियों की तैयारी, पौध रोपाई, हुप्स का लगाना और प्लास्टिक ढकना

सिंचाई की ड्रिप प्रणाली पर 50 सेमी की दूरी पर रोपण के समय प्रत्येक क्यारी पर एक ही पंक्ति में पौधरोपण किया जाता है पंक्ति से पंक्ति की दूरी 1.5 मीटर से 1.6 मीटर होती है। क्यारी में पौध रोपाई से पहले लचीले जस्ता लोहे से तैयार हुप्स को क्यारी में, 1.5 मीटर से 1.8 मीटर की दूरी पर लगा देते हैं। क्यारी में हुप्स के दो सिरों के बीच की चौड़ाई तथा क्यारी के ऊपर ऊंचाई 40 से 60 सेमी रखी जाती है। आमतौर पर सुरंगें उत्तर से दक्षिण दिशा में बनाई जाती हैं। 30 से 50 माइक्रोन की पारदर्शी प्लास्टिक का उपयोग आम तौर पर नीची सुरंग बनाने के लिए किया जाता है जो कि इन नीची सुरंगों के तापमान को बाहर के सामान्य क्षेत्र के तापमान से अधिक रखने के लिए अवरक्त विकिरण को परावर्तित कर देता है। सुबह के समय में वांछित सब्जी फसल जैसे खरबूजा ,तरबूज, टिंडा, ककड़ी, खीरा, करेला, जुकुनि आदि को रोपित कर दोपहर के बाद में प्लास्टिक से ढक दिया जाता है

फसल बढ़वार के मौसम के दौरान प्लास्टिक को खिसकाया या उसमें सुराख बनाये जा सकते हैं क्योंकि इस दौरान दोपहर के समय सुरंगों के भीतर तापमान बढ़ जाता है आम तौर पर रोपाई के बाद सुरंग के शीर्ष से 2.5 सेमी. से 3.0 सेमी. की दूरी के नीचे सुरंग के पूर्वी तरफ 3 से 4 सेंटीमीटर आकार के छिद्र हवा के निकास एवं तापमान विनिमय हेतु बनाये जाते हैं और बाद में छिद्र के आकार में वृद्धि के साथ दो छिद्र के बीच की दूरी को कम करके बढ़ाया जा सकता है। तापमान बढ़ने के साथ अंततः प्लास्टिक फरवरी के महीने में पौधे से पूरी तरह से हटा दिया जाता है। यह फसल के विकास और उस समय के प्रचलित रात के तापमान पर निर्भर करता है।

नीची सुरंग में लगी फसलों में परागण

अधिकांश कद्दूवर्गीय फसलों में परागण की आवश्यकता होती है जो आमतौर पर मधुमक्खियों द्वारा किया जाता है। पूर्ण पुष्पन की दशा में मधुमक्खियां प्लास्टिक पर बने छिद्र/वेंट्स के माध्यम से सुरंगों में आसानी से परागण का काम कर देती हैं। खरबूजा, तरबूज, टिंडा, समर स्क्वैश आदि फसलों में प्रभावी परागण के लिए 30,000 मधुमक्खियों का होना पर्याप्त होता है, मधुमक्खी के डब्बे को हमेशा मधुमक्खियों के प्रभावी काम के लिए खेत के उत्तर–पश्चिम की ओर रखा जाता है।

नीची सुरंग में लगी फसलों में उर्वरीकरण

उर्वरकों को ड्रिप सिंचाई के माध्यम से लगाया जाता है पहले महीने (जनवरी या फरवरी) के दौरान 6 से 7 दिनों के अंतराल पर पानी लगाया जा सकता है। टपक सिंचाई की सुविधा न होने पर क्यारियों के साथ बनी नालियों में पानी देते है और फसलानुसार खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करते हैं उसके बाद फसलों को प्लास्टिक से ढक दिया जाता है। फसल में पानी और उर्वरक की आवश्यकता आमतौर पर फसल उगाने का समय, किस्म और मिट्टी के प्रकार पर निर्भर करती है। खेत में फसल पर प्रारंभिक अवस्था में कीट के नियंत्रण के लिए कॉन्फीडोर जैसे कीटनाशक को ड्रिप सिंचाई के पानी के माध्यम से प्रयोग किया जा सकता है।

पौध – संरक्षण

फरवरी के महीने में सुरंगों को हटाने के बाद रोग और कीट का प्रकोप हो सकता है जैसे कि पाउडरी मिल्डयु, डाउनी मिल्डयु, चेपा और फल मक्खी आदि। डाउनी

मिल्डयु के नियंत्रण हेतु फफूंद नाशक के साप्ताहिक स्प्रे से इस बीमारी को नियंत्रित कर सकते हैं। इस हेतु रोग के लक्षणों के प्रकट होने पर मैनकोजेब 2.0 ग्राम प्रति लीटर पानी में छिड़काव करें! पाउडरी मिलडू रोग के लक्षण दिखाई देते ही कैराथेन नामक दवाई का 1–1.5 मिली प्रति लीटर पानी में स्प्रे से नियंत्रित किया जा सकता है। कीटों को नियंत्रित करने के लिए कॉन्फीडोर नामक दवाई को 1.0 मिली प्रति लीटर पानी से छिड़काव किया जा सकता है।

कुछ कद्दूवर्गीय फसलों में फसल अग्रणीकरण एवं अनुमानित लागत लाभ अनुपात

क्रम सं .	फसल	रोपण–समय	तुड़ाई – समय	फसल अग्रणीकरण	लागत लाभ अनुपात
1.	समर स्क्वैश (छप्पन कद्दू)	दिसंबर के पहले सप्ताह	फरवरी के पहले सप्ताह	60 दिन	1:3 व 1:4
2.	खरबूजा	जनवरी के तीसरे सप्ताह से फरबरी के पहले सप्ताह	अप्रैल के दूसरे सप्ताह से अप्रैल के आखिरी सप्ताह	30–40 दिन	1:2.5 व 1:3.5
3.	लौकी	– उपरोक्त –	– उपरोक्त –	30–40 दिन	1:2.5 व 1:3.5
4.	करेला	– उपरोक्त –	– उपरोक्त –	30–40 दिन	1:3 व 1:4
5.	तरबूज	– उपरोक्त –	– उपरोक्त –	30–40 दिन	1:2 व 1:2.5

फलों की तुड़ाई/कटाई

यदि फरवरी के पहले सप्ताह में खरबूजे की फसल की रोपाई की गई है, तो फल अप्रैल के तीसरे सप्ताह में तुड़ाई के लिए तैयार हो जाएगा। मध्य जनवरी में रोपाई की गई फसल अप्रैल के पहले सप्ताह में तोड़ी जा सकती है, जो सामान्य फसल से 45 दिन पहले है। इसी तरह अन्य कद्दूवर्गीय फसलें सामान्य मौसम की तुलना में 40–60 दिन पहले तैयार हो सकते हैं। नीची प्लास्टिक सुरंगो में उगाई गयी अगेती सब्जी फसलों का बाजार में काफी अच्छा मूल्य मिलता है। हमारे देश के उत्तरी मैदानी क्षेत्र में शहरों के आस पास के इलाकों में अगेती सब्जी फसल उत्पादन हेतु नीची प्लास्टिक सुरंग तकनीक का उपयोग किसानों की आय बढ़ाने में काफी मददगार साबित हो सकता है

सरसों की फसल के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन

मुकेश कुमार ढिल्लों, नवीन सिंह एवं राजेंद्र सिंह

कीट विज्ञान संभाग एवं आनुवंशिकी संभाग
भा.कृ.अं.प.– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भारत में उगाई जाने वाली खाद्य तेल की फसलों में राई–सरसों एक प्रमुख फसल है। उत्पादन की दृष्टि से मूँगफली के बाद इस फसल का दूसरा स्थान है। राई–सरसों वर्ग में मुख्यतः भारतीय सरसों, करण राई, गोभी सरसों, पीली सरसों, भूरी सरसों, तोरिया एवं तारामीरा की फसलें आती हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान एवं कृषि विश्वविद्यालयों के सतत अनुसंधान द्वारा इसके तेल एवं खली की गुणवत्ता मे आशातीत सुधार हुआ है। इन सभी फसलों के कुल क्षेत्रफल के लगभग 80 प्रतिशत भाग में भारतीय सरसों की खेती की जाती है। जैविक एवं अजैविक कारकों के प्रति सहनशीलता के गुण के कारण इस फसल का उत्पादन आंध्र प्रदेश, कर्नाटक एवं तमिलनाडु के अपारंपरिक क्षेत्रों में भी बढ़ रहा है। उपरोक्त सभी फसलों की पैदावार एवं गुणवत्ता को कई कीट बहुत हानि पहुँचाते हैं फलस्वरूप किसान एवं उपभोक्ता दोनों को ही आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। अतः यदि समय रहते इन कीटों का उचित प्रबंधन कर लिया जाये तो इनसे होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है। आर्थिक महत्व के कीट, उनकी पहचान एवं नियंत्रण के उपाय निमन्वत है।

1. सरसों का माहुः राई–सरसों की फसल में लगने वाला यह प्रमुख कीट है, इसे चेंपा, मोयला एवं तैला के नाम से भी जाना जाता है। राई–सरसों उगाये जाने वाले सभी क्षेत्रों में इस कीट का प्रकोप होता है किन्तु दक्षिणी भारत के क्षेत्रों में इसका प्रकोप अपेक्षाकृत कम होता है। मैदानी भागों में इस कीट का प्रकोप नवंबर से मार्च तक होता है। इसकी वृद्धि एवं विकास के लिए उचित तापक्रम 8° से 24° सेंटीग्रेड है। इससे होने वाली हानि 9 से 90 प्रतिशत तक होती है एवं फसल में 10 प्रतिशत तक तेल भी कम हो जाता है।

पहचानः यह एक छोटा, नाशपाती के आकार वाला नाजुक एवं मुलायम कीट है इसका प्रौढ़ पंखविहीन एवं पंखवाला दोनों तरह का होता है। पंख विहीन अवस्था में इसका रंग ज्यादातर हरा या पीला–हरा और लगभग 2 मिमी. आकार का होता है। पंख वाली अवस्था में यह पारदर्शी पंख एवं पीले उदर वाला होता है। शिशु की आकृति पंखविहीन अवस्था जैसी किन्तु आकार छोटा होता है।

हानि के लक्षणः इस कीट की प्रौढ़ एवं शिशु दोनों ही अवस्था मुलायम तने, पत्तियों, पुष्पक्रम एवं अविकसित फलियों से रस चूस कर हानि पहुंचाती हैं। पत्तियाँ मुड़ जाती हैं, फूलों से फलियाँ नहीं बनती। यदि पौधे की आरंभिक अवस्था में ही इस कीट का प्रकोप हो गया है तो उचित बढ़वार न होने के कारण फूल नहीं आ पाते है। इस कीट के शरीर से होने वाला स्राव पौधे पर फफूंद रोगों की वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न करता है।

नियंत्रणः माहु कीट के प्रबंधन के लिए इसके प्राकृतिक दुश्मन कीटों जैसे कोक्सिनेला सेप्टमपंकटाटा, मेनोचिलस सेक्समाकूलाटा, हिप्पोडेमिया वेराइगेटा, चाइलोमोनेस विसीनिया एवं क्राइसोपेरला कार्निया आदि का संरक्षण करें। इन कीड़ों के प्रौढ़ एक दिन में 10–15 माहु को खा कर इसका प्रभावी नियंत्रण करते हैं। जब 26–28 माहुं प्रति पौधा दिखाई दें तो रासायनिक नियंत्रण के लिए ओक्सीडेमेटोन मिथाइल 25 ईसी या डाइमेथोएट 30 ईसी /1 मिली प्रति लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करें।

2. बगराड़ा या चितकबरा मत्कुणः यह कीट राई–सरसों की फसल को सभी क्षेत्रों मे बहुत अधिक नुकसान पहुंचाता है फलस्वरूप 31.10% बीज की पैदावार एवं 3–4% तक तेल की मात्रा कम होती है।

पहचानः यह कीट प्रायः अंडे के आकार, धूसर से गहरे–भूरे या काले रंग का होता है इसकी पीठ पर नारंगी/भूरे रंग

के धब्बे होते हैं। पूर्ण विकसित प्रौढ़ 6.5–7.0 मिमी. चौड़ा एवं शिशु भूरे चिन्ह वाले 4.0 मिमी. लंबे एवं 2.6 मिमी. चौड़े होते हैं। अक्सर इस कीट को कटी हुई फसल पर भारी संख्या में देखा जा सकता है।

हानि के लक्षणः इस कीट का प्रौढ़ एवं शिशु दोनों ही पौधे के अंकुरण की अवस्था एवं परिपक्व फसल की कटाई की अवस्था में पत्तियों एवं तने से रस चूसकर हानि पहुंचाते हैं। अंकुरण की अवस्था में मुलायम प्ररोह मुरझा कर गिर जाते हैं एवं पौधा मर जाता है। पत्तियों पर सफेद रंग के धब्बे बन जाते हैं। कई बार फसल को दुबारा बोने की जरूरत पड़ जाती है। इस कीट के फलियों के बनने की अवस्था में लगने पर फलियाँ भी मुड़ जाती हैं एवं बीज सिकुड़ जाते हैं। शिशु एवं प्रौढ़ एक प्रकार का रेसिनस पदार्थ उत्सर्जित करते हैं जो फलियों को खराब कर देता है।

नियंत्रणः खेत की गहरी जुताई बगराड़ा के अंडों को खत्म कर देती है। बीज को इमिड़ाक्लोप्रिड़ डब्लूएस /5.0 ग्रा/किग्रा बीज से उपचारित करना चाहिए। अंकुरण की अवस्था पर नियंत्रण हेतु मेलाथिओन धूल/25 किग्रा प्रति हेक्टर का बुरकाव करना चाहिए।

3. सरसों की आरा मक्खीः यह कीट मुख्यतः उत्तर प्रदेश, बिहार एवं पश्चिम बंगाल मे हानि पहुंचाता है।

पहचानः प्रौढ़ आरा मक्खी 8–11 मिमी लंबाई की पीले–नारंगी रंग की बर्र होती है जिसके पंखो का रंग धुएँ जैसा होता है। जिनमें काली धारियाँ होती हैं। इसका सिर एवं पैर काले रंग के होते हैं। इस कीट के लार्वा का शरीर झुर्रीदार जिस पर पाँच पार्श्व धारियाँ होती हैं, रंग पीलापन लिए हरा से गहरा हरा होता है। यह हल्की छुअन से गिरकर मरने का बहाना करता है।

हानि के लक्षणः अक्तूबर से नवंबर के महीने मे तीन से चार सप्ताह की फसल पर ज्यादा हानि करता है। शुरुआत में पत्ती के किनारे कुतरते हुए मध्य शिरा की ओर बढ़ता है। इसका लार्वा बहुत सारे गोल छेद करता है एवं पूरी पत्ती को खाकर छलनी कर देता है। लार्वा तने की बाह्य त्वचा को भी खा जाते हैं, फलस्वरूप पौधा सूख जाता है। गंभीर संक्रमण की दशा में ऐसा प्रतीत होता कि फसल को जानवरों द्वारा चर लिया गया है एवं फसल को दुबारा बोने की जरूरत पड़ जाती है।

नियंत्रणः पौध अवस्था में फसल की सिंचाई करने से लार्वा डूब कर मर जाते हैं अतः कीट के नियंत्रण में इस अवस्था में सिंचाई सहायक है। प्रातः एवं साँय लार्वा को इकट्ठा कर मार देना चाहिए। 2% मिथाईल पेराथिओन धूल का 25 किग्रा/हेक्टर की दर से बुरकाव या 1.5–2.0 मि.ली./ली. पानी मेलाथिओन 50 ई सी का छिड़काव इस कीट का प्रभावी रूप से नियंत्रण करते हैं।

4. बंद गोभी की तितलीः इस कीट को पहले गौण माना जाता था लेकिन पिछले 4–5 वर्षों में यह सरसों की फसल के लिए गंभीर नाशक जीव के रूप में सामने आया है, विशेषतः करण राई की फसल को बहुत क्षति पहुंचाता है।

पहचानः प्रौढ़ तितली पीले सफेद रंग की होती है जिसके पंखों का विस्तार 55–66 मिमी तक होता है, इसके अगले पंखों के किनारे पर विशिष्ट काले रंग के चिन्ह होते हैं, मादा तितली के अगले पंखों पर दो अतिरिक्त काले चिन्ह होते हैं।

हानि के लक्षणः काले रंग की इल्लिया झुंड मे पत्तियों को खा जाती हैं। गंभीर संक्रमण की दशा में तने को छोडकर पूरे पौधे को चट कर जाती हैं।

नियंत्रणः इस कीट की सुंडियाँ प्रारम्भिक अवस्था में पत्तियों के ऊपर झुंड में रहती हैं उस समय उन संक्रमित पत्तियों को तोड़कर इस कीट को नष्ट कर दें। रासायनिक नियंत्रण हेतु डाइक्लोरवास 76 ई सी/10 मिली प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें। इस कीट की सुंडियों को खाने वाले अपांटेलेस ग्लोमेरटस परजीवी कीट का संरक्षण करें।

5. बिहार की रोयेंदार इल्लीः इस कीट को सामान्यतः कतरा, कंबल कीड़ा या बालों वाली सूँडी के नाम से जाना जाता है। यह कीट सरसों उगाये जाने वाले पूरे क्षेत्र में छिटपुट रूप मे सब जगह पाया जाता है।

पहचानः इसके पंख भूरे रंग के होते हैं जिनका फैलाव

40–50 मिमी तक होता है। इसका उदर लाल रंग का होता है। लार्वा लाल पीले रंग का तथा 5 सेमी तक लंबा होता है जिसका शरीर लंबे काले या पीले रंग के बालों से ढका होता है।

हानि के लक्षणः लार्वा झुंड में पत्तियों की निचली सतह या किनारे खाता है, इस कीट के चौथी से पाँचवी अवस्था के लार्वा प्रतिदिन अपने शारीरिक वजन से ज्यादा भोजन कर जाते हैं, गंभीर संक्रमण की दशा में पूरी फसल पत्तीविहीन हो जाती है। पत्तियाँ हरितलवक रहित,पारदर्शक एवं कागजनुमा हो जाती हैं। नियंत्रण इस कीट के अंडों एवं प्रारम्भिक अवस्था में झुंड में रहने वाली सुंडियों को सप्ताह में दो बार पत्तियों को तोड़कर नष्ट करें।

6. सरसों का सुरंगी कीटः यह कीट सरसों उगाये जाने वाले पूरे क्षेत्र में छिटपुट रूप मे सब जगह पाया जाता है। यह कीट बीज की पैदावार में 4.4–15.5% तक कमी कर देता है।

पहचानः यह कीट 1.5 मिमी लंबा होता है। वयस्क अवस्था में केवल दो ही पंख होते हैं जिनका फैलाव 4 मिमी होता है तथा गर्दन के पास सलेटी काले एवं पीले रंग का धब्बा होता है।

हानि के लक्षणः यह कीट दिसंबर से मई माह तक सक्रिय रहता है तथा बाकी समय डिंभक अवस्था में मिट्टी में रहता है। प्रायः पुरानी पत्तियों को ज्यादा नुकसान पहुंचाता है। अत्यधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ मुरझा जाती हैं तथा पौधे का औज कम हो जाता है

नियंत्रणः चिपकाने वाली पीली पट्टी अथवा कार्ड खेत में लगाने से इस कीट की संख्या में कमी की जा सकती है। रासायनिक नियंत्रण हेतु डाइमेथोएट 30 ईसी 1 मिली/ लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करें। 5% नीम बीज के सत का छिड़काव करें।

7. हीरेनुमा पीठ वाला पतंगाः यह कीट सरसों उगाये जाने वाले पूरे क्षेत्र में छिटपुट रूप मे सब जगह पाया जाता है।

पहचानः वयस्क सलेटी या भूरे रंग के होते हैं, जिनका शरीर 8–10 मिमी एवं पंख फैलाव 10–15 मिमी तक होता है। आगे वाले पंखों के अंदर वाले सिरे पर त्रिभुजाकार निशान होते हैं जोकि आराम की अवस्था में विपरीत पंखों के मिल जाने पर हीरेनुमा प्रतीत होते हैं। इसी कारण इसका नाम डायमंड बैक मोथ है। हल्के हरे रंग का लार्वा दोनों सिरों से लंबा पतला होता है।

हानि के लक्षणः तरुण लार्वा पत्तियों की ऊपरी सतह खाता है जिस से पत्तियों पर सफेद धब्बे दिखाई देते हैं जबकि बड़े लार्वा पत्तियों में छेद कर देते हैं। बड़े लार्वा कलियों में भी छेद कर देते हैं तथा बनते हुए बीज को खा जाते हैं। नियंत्रण प्रारम्भिक अवस्था में झुंड में रहनेवाले लार्वा को सप्ताह में दो बार इकठ्ठा कर सावधानी पूर्वक नष्ट करें। कोटेसिया प्लुटेल्ली एवं डाइडेग्मा इंसुलेरी इस कीट के प्राकृतिक शत्रु हैं, अतः इन कीटों का संरक्षण करें। 5% नीम बीज के सत का छिड़काव करें।

8. पत्ती जाली कीटः सामान्यतः इसे पत्ती मोड़क कीट के नाम से भी जाना जाता है। यह कीट सरसों उगाये जाने वाले पूरे क्षेत्र में पाया जाता है।

पहचानः वयस्क पीले–भूरे रंग का होता है तथा अग्रिम पंखों पर लाल–भूरे रंग की गहरी तरंगनुमा रेखाएँ व सफेद निशान होते हैं तथा अर्धपार्श्व काले धब्बों की शृंखला धारण किये होता है।

हानि के लक्षणः तरुण लार्वा कोमल पत्तियों का हरित लवक खाता है। बाद में यह पौधे की ऊपरी पत्तियों, कलियों तथा पुष्पक्रम को खा–कर उनका एक जाल बना देता है। गंभीर प्रकोप होने पर पौधे पत्तियों रहित एवं फलियाँ बीज रहित हो जाती हैं।

नियंत्रणः कीट का प्रकोप होने पर रासायनिक नियंत्रण हेतु फेनवेलेरेट 20 ई सी/0.5 प्रति लीटर पानी के घोल का फसल पर छिड़काव करें।

यदि किसान अपनी फसल की उचित देख–भाल करते हुए उपरोक्त समेकित नाशी जीव प्रबंधन करें तो हानिकारक कीटों से पैदावार एवं गुणवत्ता में होने वाली क्षति से अपनी फसल को बचा सकते हैं।

आंवले के प्रसंस्कृत उत्पाद एवं उनकी उपयोगिता

राकेश कुमार पाण्डेय, ओम प्रकाश अवस्थी एव देवानी मुरुगन
फल एवं उद्यानिकी प्रौद्योगिकी संभाग,
भा.कृ.अ.प.– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

आंवला या भारतीय गुजबेरी "यूफोरविएसी" कुल का पौधा है। यह भारतीय उपमहाद्वीप का अतिविशिष्ट फल है। भारत में यह उष्ण एवं उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में आसानी से उगाया जाता है। आवंले का शुष्क बागवानी में विशेष स्थान है। पिछले कुछ वर्षो में शुष्क क्षेत्रों में आंवले का उत्पादन काफी बढ़ा है, जो निकट भविष्य तथा वर्तमान के कोरोना काल में पोषण सुरक्षा स्तर में सुधार के साथ–साथ बीमारियों से लड़ने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। आंवले का फल अत्यंत लाभकारी एवं स्वास्थ्यवर्धक होता है। इसे अपने अद्वितीय औषधि एवं पोषक गुणों के कारण "अमृतफल" भी कहा जाता है। इसमें प्रचुर मात्रा में विटामिन सी के साथ अन्य पोषक तत्व जैसे कार्बोहाइड्रेट, रेशा, लोहा, कैल्सियम, फास्फोरस और विटामिन्स का भी होता है, इसलिए आंवले का नियमित सेवन मधुमेह, पाचन सम्बन्धी, नेत्र, हृदय सम्बन्धी व रक्त विकार संतुलित करने में लाभकारी होता है। आंवला का फल अम्लीय एवं कसैला होता है जिसके कारण फल तुरंत उपयोग हेतु उपयुक्त नहीं होते हैं। अतः आंवले के गुणों को संरक्षित करने हेतु तथा इसके उत्पादों की उपलब्धता पूरे वर्ष सुनिश्चित करने हेतु बहुत सारे उपयोगी व स्वादिष्ट उत्पाद बनाये जाते हैं। व्यावसायिक स्तर पर आंवले से अचार, मुरब्बा, रसीले फांकें, सूखी मीठी फांकें, रस, लड्डू, बर्फी, पावडर, चूरन व च्यवनप्राश बनाये जाते हैं। आंवले के विभिन्न उत्पादों को बनाने के लिए उपयुक्त किस्मों का चयन करना महत्वपूर्ण होता है। आंवले के प्रसंस्कृत उत्पादों को बनाने के लिए अनेक व्यावसायिक किस्में जैसे कृष्णा, चकैया, एन. ए. 6, एन. ए. 7, कंचन, एन. ए.10 तथा लक्ष्मी 52 उपयोग में लायी जा रही हैं।

आंवले के प्रमुख प्रसंस्कृत उत्पाद

1. आंवले का मुरब्बा

आंवला प्रसंस्कृत उत्पादों में, आंवले के मुरब्बा का प्रमुख स्थान है। यह औषधीय तथा पोषण गुणों से भरपूर होता है। आंवले का मुरब्बा न केवल रुधिर को शुद्ध करता है, अपितु शरीर में कोलेस्ट्रोल की मात्रा को भी कम करता है। यह आँखों की रोशनी बढ़ाने में भी बहुत लाभप्रद है।

आंवला मुरब्बा बनाने की विधियां

आंवला मुरब्बा बनाने की कई विधियां हैं–

प्रथम विधि में बड़े आकार के बिना रेशे वाले आंवला के फलों को 2–8 प्रतिशत नमक के घोल या चूने के पानी में 9–11 दिनों के लिए रखा जाता है ताकि फलों का कसैलापन दूर किया जा सके, इसके बाद फलों को अच्छी तरह से धोते हैं और उतनी ही मात्रा में चीनी मिलाकर एक रात के लिए छोड़ देते है। अगले दिन चीनी के घोल को 70 डिग्री ब्रिक्स टी. एस. एस. तक सांद्रित करके उसमें फलों को डुबो देते है। यह प्रक्रिया 3–4 बार दोहराई जाती है और अंत में तैयार मुरब्बे को साफ–सुथरे जार में 70–75 डिग्री ब्रिक्स वाले शर्करा के घोल के साथ डिब्बाबंदी कर देते हैं। इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए की आंवले चाशनी में डूबे रहें।

मुरब्बा बनाने की दूसरी विधि में सर्वप्रथम फलों को साफ पानी में अच्छी तरह से धोते हैं, इसके बाद आंवले

गोदने वाली मशीन से गोदने के बाद पुनः पानी में डाल देते हैं। तत्पश्चात आंवले को 0.2 प्रतिशत फिटकरी तथा 0.5 प्रतिशत सोडियम सल्फाइड वाले उबलते पानी के घोल में 2–3 मिनट तक पकाते हैं। पकाने के तुरंत बाद भगौने में चीनी की एक परत बिछाते हैं तथा इसके ऊपर आंवले की एक तह लगा देते हैं। पुनः चीनी की एक तह लगाकर 24 घंटे के लिए रख देते हैं। अगले दिन अधिकांश चीनी घुल जाती है और आंवले को इस चीनी के घोल से निकल लेते हैं। इसके बाद चीनी के घोल को उबालकर नींबू का रस मिला कर चीनी का मैल निकालते हैं तथा इसे कपड़े से छान लेते हैं। आंवले को गरम चाशनी में 24 घंटे के लिए छोड़ देते हैं। तीसरे दिन पुनः आंवले को निकालकर, चाशनी को पकाकर, चीनी की मात्रा 70–72 प्रतिशत या दोतार कर लेते हैं। तत्पश्चात आंवले को फिर गरम चाशनी में डाल देते हैं। जब मुरब्बा ठंडा हो जाये तो इसे सूखे तथा साफ–सुथरे जार में भर देते हैं।

2. आंवला कैन्डी

आंवला कैन्डी पोषक तत्वों से भरपूर एवं बहुत ही लाभदायक उत्पाद है। अच्छी ग्राह्यता, कम जगह घेरने, विशिष्ट पोषक गुण एवं ज्यादा समय तक भण्डारण क्षमता होने के कारण आंवला कैन्डी अत्यधिक लोकप्रिय है। इसका नियमित रूप से सेवन शरीर को ताजगी प्रदान करता है, दांत व मुंह के रोग तथा मुंह की बदबू से निजात दिलाता है।

कैन्डी बनाने की विधि आंवला कैन्डी बनाने के लिए, फलों को अच्छी तरह धुलने के बाद, खौलते पानी में 6–8 मिनट तक गर्म करते हैं, तत्पश्चात ठंडा करके फांकों को अलग कर लेते हैं। इन फांकों को रात भर के लिए 60 डिग्री ब्रिक्स तथा 0.7 प्रतिशत अम्लीय घोल (1:15 अनुपात) में रख देते हैं। अगले दिन फांकों को घोल से निकालकर घोल को गर्म करके उसमें शक्कर मिलाकर उसकी सान्द्रता 70 डिग्री ब्रिक्स कर लेते हैं। फांकों को पुनः रातभर भिगोकर, अगले दिन शर्करा के घोल से निकालकर, फांकों को गुनगुने पानी में धो लेते हैं, इसके बाद फांकों को निर्जलित करने के लिए धूप में सुखाते हैं। सूखी फांकों में जल की मात्रा 10 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। फांकों को जार या पॉलिथीन की थैलियों में भरकर भण्डारित करते हैं।

3. आंवला चूर्ण

आंवला चूर्ण बनाने के लिए फलों के आकार को लेकर कोई बाध्यता नहीं होती है। इसमें छोटे तथा बड़े सभी आकार के फलों का प्रयोग किया जा सकता है। आंवला चूर्ण बनाने के लिए फलों को अलग–अलग फांकों में काटकर धूप में अच्छी तरह से सुखा लेते हैं, तत्पश्चात इनको पीसकर चूर्ण बना लेते हैं। 100 ग्राम आंवला चूर्ण बनाने के लिए 8 ग्राम साधारण नमक, 10 ग्राम काला नमक, 15 ग्राम चीनी, 3 ग्राम साइट्रिक अम्ल, 2 ग्राम पिसी कालीमिर्च, 1 ग्राम हींग, 1 ग्राम भुना पिसा जीरा, 1 ग्राम पिसी सौंफ, 1.5 ग्राम सोंठ और 0.5 ग्राम अजवाइन की आवश्यकता होती है। चूर्ण बनाने के पश्चात इसे सूखे जार में हवा अवरोधी अवस्था में भण्डारित करते हैं। आंवला चूर्ण का नियमित उपयोग शरीरिक विकारों को दूर करने में अत्यंत लाभकारी है।

4. आंवला की मीठी रसीली फांकें

आंवला की मीठी रसीली फांकें एक उत्तम एवं पौष्टिक आंवला उत्पाद है। इसमें विटामिन सी की मात्रा मुरब्बे की अपेक्षा ज्यादा होती है।

बनाने की विधिय आंवला की मीठी रसीली फांकें बनाने की विधि बहुत सरल है तथा इसके लिए बड़े आकार के फल ज्यादा उपयुक्त होते हैं। सर्वप्रथम फलों को अच्छी तरह से धुलकर, 5–6 मिनट तक उबालकर फांकें अलग कर लेते हैं। इन फांकों को महीन कपड़े से छने 50 डिग्री ब्रिक्स सान्द्रता वाले चीनी के घोल में जिसमे 0.5 प्रतिशत साइट्रिक अम्ल भी होता है, डुबोते है तथा रातभर के लिए छोड़ देते हैं। अगले दिन फांकों को घोल से निकालकर, पुनः 60 डिग्री ब्रिक्स सान्द्रता वाले गर्म घोल में डुबो कर रातभर के लिए रख देते हैं। अगले दिन फांकों को निकालकर, घोल को गर्म करके 70 डिग्री ब्रिक्स कर लेते हैं। इसके बाद साफ–सुथरे कांच के जार में फांकें भरकर, गर्म घोल को इस प्रकार डालते हैं, कि फांकें पूरी तरह से डूब जाएँ। भरे हुए जारों को ढक्कन से अच्छी तरह से सील

करके स्वच्छ एवं शुष्क स्थान पर भण्डारित कर लेते हैं।

5. आंवला जूस

आंवला का जूस अत्यंत पौष्टिक तथा शरीर को ताजगी प्रदान करने वाला होता है। आंवला जूस बनाने के लिए सर्वप्रथम फलों को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर बीज निकाल लेते हैं। इसके बाद टुकड़ों को फिल्टर प्रेस से दबाकर जूस निकाल लेते हैं तथा 78 डिग्री सेंटीग्रेड तक गर्म करके जीवाणु विहीन कर लेते हैं। तैयार जूस को निर्जलीकृत कांच की बोतल में भरकर 500 पी.पी.एम. सल्फर डाइऑक्साइड या 1 ग्राम मेटा बाई सल्फाइट प्रति लीटर के हिसाब से मिलाकर परिरक्षित कर लेते हैं।

6. आंवला पल्प

आंवला पल्प बनाने के लिए, 1 किलोग्राम आंवला पल्प, 2.5 किलोग्राम शक्कर, 0.5 लीटर पानी तथा 5 ग्राम साइट्रिक अम्ल की आवश्कता होती है। आंवला पल्प तैयार करने के लिए सर्वप्रथम गूदा निकालने वाली मशीन से पल्प को बीज से अलग कर लेते हैं। इसके बाद शक्कर, पानी तथा साइट्रिक अम्ल को मिलाकर हिलाते हैं ताकि शक्कर इसमें घुल जाये। बाद में मिश्रण को बारीक पीसते हुए पल्प के साथ मिलाते हैं। अब पोटेशियम मेटा बाई सल्फाइट मिलाकर बोतल या जार में भरकर भण्डारित कर लेते हैं।

7. आंवला टॉफी

आंवले के फलों से स्वादिष्ट टॉफी बनाई जाती है। आंवले की टॉफी बनाने के लिए 1 किलोग्राम आंवला 300 पी.पी.एम. सोडियम बेन्जोएट तथा 5 ग्राम नमक की आवश्यकता होती है। सर्वप्रथम आंवले के गूदे को अलग करके, पीसकर तथा जाली से छान लेते हैं। बाद में इसमें 300 पी.पी.एम. सोडियम बेन्जोएट तथा 5 ग्राम नमक मिलाते हैं, तत्पश्चात 1 किलोग्राम शक्कर मिलाकर मिश्रण को अच्छी तरह से पकाते हैं। इसके बाद 1 सेमी मोटी परत जमाकर, 1.5 से 2.5 सेमी आकार के टुकड़े में काटकर टॉफियाँ तैयार कर लेते हैं।

8. आंवले की चटनी

आंवले की चटनी बनाने के लिए सर्वप्रथम 1.25 किलोग्राम आंवला फल लेते हैं, इसके अतिरिक्त 1 किलोग्राम चीनी, 50 ग्राम नमक, 50 ग्राम कटा हुआ प्याज, 15–15 ग्राम कतरा हुआ अदरक तथा लहसुन, 10 ग्राम लाल मिर्च पाउडर, 10–10 ग्राम इलायची, दालचीनी, गोल मिर्च तथा जीरा पाउडर लेते हैं। आंवले के फलों को अच्छी तरह धोकर, 25–30 मिनट उबालकर बीज को निकल लेते हैं। अब गूदे के साथ, गूदे के वजन की आधी मात्रा में पानी, चीनी और नमक मिलाकर उबालते हैं। बाकी सभी अन्य अवयवों को कूटकर, एक कपड़े की थैली में रखकर गूदे के साथ गर्म करते हैं। गर्म करते समय मसालों की थैली को दबाते रहते हैं तथा जैम की दृढ़ता आ जाने तक पकाते हैं। तत्पश्चात स्टेरेलाइज्ड बोतल में भरकर सीलकर देते हैं तथा ठन्डे एवं शुष्क स्थान पर भण्डारित कर लेते हैं।

9. आंवले का अचार

आंवले का अचार बनाने के लिए 1 किलोग्राम आंवला फल हेतु 150 ग्राम नमक, 10 ग्राम हल्दी चूर्ण, 10 ग्राम कलौंजी, 10 ग्राम लाल मिर्च पाउडर, 30 ग्राम मेथी, 5 लौंग और 350 मिलीलीटर तेल की आवश्यकता होती है। सभी मसालों का मिश्रण बनाकर तेल में भून लेते हैं। इसके बाद फांकों को तेल सहित मसालों के साथ 5 मिनट तक फ्राई करते हैं। अंत में नमक मिलाते हैं और बर्तन में भरकर एक सप्ताह तक धूप में सुखाते हैं। इसके बाद अचार को भण्डारित कर लेते हैं।

10. आंवले का जैम

आंवले के गूदे को शक्कर की निश्चित मात्रा के साथ अम्ल व पेक्टिन की उपस्थिति में एक निश्चित अवस्था तक पकाने के बाद प्राप्त होने वाले गाढे पदार्थ को जो कुछ घंटो के बाद जम जाता है जैम कहते हैं। आंवला जैम को बनाने के लिए 1 किलोग्राम आंवला, 150 मिलीलीटर पानी, 1.25 किलोग्राम शक्कर, 4 ग्राम नींबू का रस, चुटकी भर खाने का लाल रंग तथा सोडियम बेन्जोएट 1 ग्राम प्रति किलोग्राम तैयार पदार्थ पर मिलाते हैं। जैम को तैयार करने के लिए सर्वप्रथम आंवले को अच्छी तरह धोकर, गूदा निकालकर, पतले टुकड़े में काट लेते हैं। तत्पश्चात पानी में उबालकर, आसानी से चूरा बनाने योग्य बनाते हैं। इसके बाद चूरे को छानकर रेशे को अलग कर लेते हैं। छाने हुए पदार्थ को आंच पर शक्कर डालकर पकाते हैं

तथा आवश्कतानुसार पेक्टिन अलग से मिला सकते हैं। जैम के चिपचिपेपन को दूर करने के लिए इसमें नींबू का रस या पेक्टिन मिलाते हैं, तत्पश्चात शीट टेस्ट करते हैं। पदार्थ को चम्मच में लेकर ऊपर से गिराते हैं, जैम बन जाने बाद यह बूंद की बजाय थक्के के रूप में गिरता है। तैयार हो जाने के बाद इसमें रंग तथा सोडियम बेन्जोएट डालते हैं। तैयार जैम को गर्म अवस्था में ही चौड़े मुंह के जार या बोतल में भरकर, ठंडा करके सील लगा देते हैं और भण्डारित कर लेते हैं।

11. आंवले की जेली

आंवले की जेली अत्यंत स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्यवर्धक होती है। यह पारदर्शी अच्छी तरह से जमी हुई, चिपचिपाहट रहित तथा आंवले का स्वाद लिए हुए होती है। आंवले की जेली, आंवला के चूरे को पेक्टिन के साथ गर्म करके बनता है। यह अर्धठोस पदार्थ होता है जेली बनाने के लिए 1 किलोग्राम आंवला, 1.25 किलोग्राम शक्कर, 4 ग्राम नींबू का रस तथा पेक्टिन आवश्कतानुसार लेते हैं। सर्वप्रथम आंवले को अच्छी तरह से धोकर गूदा निकाल लेते हैं, तत्पश्चात गूदे को इसके भार का डेढ़ गुना पानी मिलाकर 20–30 मिनट तक उबालते हैं तथा उबालने के दौरान 2 ग्राम नींबू का रस एक किलोग्राम फल के भार के अनुसार मिला देते हैं। इसके बाद मिश्रण को छानकर पूर्णरूप से दबाकर जरूरत के हिसाब से पेक्टिन मिलाते हैं, तत्पश्चात पेक्टिन टेस्ट करके आवश्कतानुसार शक्कर मिलते हैं। फिर इसे उबालते हैं और अंतिम बिंदु टेस्ट करते हैं, अंतिम बिंदु प्राप्त हो जाने के बाद उबालना बंद कर देते हैं। इसके बाद रंग तथा बचा हुआ नींबू का रस मिला देते हैं और जेली बनकर तैयार हो जाती है जेली की अंतिम बिंदु निकालने की कई विधियाँ हैं जिसमें तापमान टेस्ट प्रमुख एवं आसान विधि है। इसमें जेली को 105 डिग्री सेंटीग्रेड तक 65 प्रतिशत घुलनशील ठोस होने तक गर्म करते हैं।

12. आंवले का च्यवनप्राश

वर्तमान के कोरोनाकाल में आंवले का च्यवनप्राश अत्यंत स्वास्थ्यवर्धक एवं गुणकारी है। यह एक रोगप्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने वाला पदार्थ है जिसमें शरीर के लिए आवश्यक सभी तत्व विद्यमान रहते हैं। च्यवनप्राश का एक चम्मच 38 कैलोरी उर्जा, 0.4 ग्राम वसा, 8 ग्राम प्रोटीन तथा 0.2 ग्राम सोडियम प्रदान करता है। इसके साथ–साथ इसमें लौह तत्व, तांबा, कैल्शियम, मैग्नीशियम, पोटेशियम एवं रेशा भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। आंवला पूर्णतया कोलेस्ट्रोल मुक्त होता है। यह शरीर को बलिष्ठ बनाने के साथ–साथ बुद्धि को भी तेज करता है।

बनाने की विधियां: आंवले के फलों से च्यवनप्राश बनाने के लिए 1 किलोग्राम आंवला, 1.5 किलोग्राम शक्कर, 5 ग्राम नींबू का रस, 2 ग्राम फिटकरी तथा 0.5 ग्राम सोडियम सल्फाइड लेते हैं। सर्वप्रथम आंवले को सुखा लेते हैं, तत्पश्चात 40 ग्राम औषधि जिसमें पाटला, अरणी, गंभारी, बेल, श्योनाक की छालें तथा शालपर्णी, पुष्टपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, पीपल, काकडासिंगी, मुनक्का, गिलोय, हाड, खरैटी, भूमि आंवला, अडूसा, जीवती, कचूर, नागरमोथा, मूंगपरनी, विदिरीकंद, पुष्करमूल, कोवाठोड़ी, माशपरनी, सांठी, कमलगट्टा, छोटी इलायची, अगर, चन्दन और अष्टवर्ग की आंठों औषधियां सब 40 ग्राम लेकर जौ के सामान चूर्ण कर लेते हैं तथा 8 गुना पानी मिलाकर काढ़ा तैयार करते हैं। मिश्रण को तब तक उबालते रहते हैं जब तक कि इसका छठवां हिस्सा न रह जाये। इसके बाद काढ़े को छानकर अलग रख लेते हैं। फिर सूखे आंवले को कलाईदार भगौने में लगभग 250 ग्राम शुद्ध घी लेकर मध्यम आंच में पकाते हैं तथा भूनकर लाल कर लेते हैं। जब आंवले की पिटी से घी अलग होने लगे तो आग से भगौना उतारकर अलग रख लेते हैं, इस क्रिया में आंवले का विटामिन सी नष्ट हो जाता है। अब इस बर्तन में काढ़ा लेकर गर्म करते हैं तथा शक्कर मिलकर गाढ़ा करते हैं, चीनी के पकने पर आंवले की पिटी इस काढ़े में मिलाकर मंद आंच पर धीरे–धीरे पकाते हैं। जब सभी चीजें गाढ़ी होने लगें तथा अवलेह की तरह बनने लगें तब आंच से उतार लेते हैं। इसके बाद प्रक्षेप द्रव्य को सीधे च्यवनप्राश में मिलाकर, ठण्डा करके, डिब्बों में भरकर भण्डारित कर लेते हैं।

कार्नेशन की पॉलीहाउस में खेती

एम के सिंह

पुष्प विज्ञान एवं भूदृश्य निर्माण संभाग
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–12

कार्नेशन (*डाएन्थस कैरियोफाइलस*) कैरियोफाइलेसी कुल का एक अत्यन्त आकर्षक एवं व्यावसायिक रुप से महत्वपूर्ण पुष्प है। इसका उत्पत्ति स्थल दक्षिण फ्रांस माना जाता है। इसको डिवाइन पुष्प के नाम से भी जाना जाता है। इसके पुष्प विभिन्न रंगों के जैसे गुलाबी, लाल, पीला, सफेद एवं विभिन्न प्रकार के मिश्रित रंगों में भी पाये जाते हैं। कार्नेशन के कर्तित पुष्प को गुलदस्ता बनाने, घर एवं गाड़ियों की सजावट इत्यादि में किया जाता है। इसकी व्यावसायिक खेती यूरोप, उत्तर अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका, कोलम्बिया, केन्या, इटली, टर्की, मोरक्को, नीदरलैण्ड, इजराइल, पोलैण्ड, स्पेन, भारत इत्यादि देशों में की जा रही है। मैदानी क्षेत्रों में पुष्प का उत्पादन सितम्बर से फरवरी के महीनों में की जाती है जबकि पहाड़ी क्षेत्रों में इसकी खेती लगभग पूरे वर्ष की जा सकती है। स्टैन्डर्ड कार्नेशन की किस्में पूरे वर्ष पुष्प उत्पादित करती हैं। इस प्रकार के कार्नेशन की खेती पॉलीहाउस एवं खुले मैदान में की जाती है। भारत में इसकी खेती के लिए महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश एवं उत्तराखण्ड के आस–पास का क्षेत्र उपयुक्त है। हमारे देश में दिन–प्रतिदिन स्टैन्डर्ड कार्नेशन के पुष्प की मांग बढ़ने के कारण इसकी खेती का क्षेत्रफल बढ़ता जा रहा है।

जलवायु

इसकी खेती के लिए जलवायु ठण्डी, स्थिर तापमान तथा कम आर्द्रता होनी चाहिए। गर्मी के मौसम में अधिक तापमान होने के कारण इसकी पुष्प डण्डी छोटी एवं पतली हो जाती है तथा पुष्प का आकार भी छोटा हो जाता है। आर्द्रता अधिक होने पर इसके पौधों पर फफूंदी रोग का प्रकोप बढ़ जाता है। जलवायु में प्रकाश, तापमान, आर्द्रता एवं कार्बन डाइऑक्साइड का प्रभाव पौधों पर होता है।

कार्नेशन का पुष्प

प्रकाश

कार्नेशन लम्बे प्रकाश अवधि का पौधा है। अर्थात् प्रकाश अवधि कम होने पर पुष्पन विलम्ब से होता है। इसके पौधों के बढ़वार के समय प्रकाश कम होने पर कृत्रिम विधि से बिजली के बल्ब के माध्यम से अतिरिक्त प्रकाश पौधों को देना चाहिए। इसकी पुष्प डण्डियां सदैव लम्बी प्रकाश अवधि में लम्बी होती हैं। कार्नेशन में नये शूट पर 4 से 5 जोड़े पत्तियों की स्थिति में लम्बी प्रकाश अवधि देने पर फूल 20 से 25 दिन पहले आ जाता है।

तापमान

कार्नेशन के पौधों की बढ़वार तापमान पर बहुत ही निर्भर करता है। गुणवत्ता युक्त कार्नेशन का पुष्प उत्पादन के लिए जाड़े के मौसम में सूर्य की अधिक रोशनी तथा गर्मी के दिनों में वातावरण के तापमान का कम होना जरूरी है। इसके पौध रोपण के समय 16 से 20^0 सेल्सियस तापमान का होना अच्छा पाया गया है। कार्नेशन के पौधों की अच्छी बढ़वार एवं पुष्प उत्पादन के लिए जाड़े के मौसम में रात्रि का तापमान 10 से 12^0 सेल्सियस तथा दिन का तापमान 18 से 20^0 सेल्सियस अच्छा पाया गया है। गर्मी के मौसम में दिन का तापमान 25 से 28^0 सेल्सियस तथा रात्रि का तापमान 13 से 16^0 सेल्सियस अच्छा पाया गया है। कार्नेशन में पुष्प कलिका बनते समय कम तापमान होने पर पुष्पन में विलम्ब होता है। ठण्ड के दिनों में पॉलीहाउस का तापमान बहुत ही कम होने पर कृत्रिम तरीके से इसके अंदर का

तापमान बढ़ाने की आवश्यकता होती है। ऐसा न करने पर इसके पुष्प की उपज कम हो जाती है। स्टैन्डर्ड कार्नेशन में तापमान की अस्थिरता के कारण इसकी पैदावार में कमी आ जाती है जबकि स्प्रे कार्नेशन में तापमान में होने वाले बदलाव को सहन करने की क्षमता ज्यादा होती है। गर्मी के मौसम में पॉलीहाउस के पॉलीथीन पर चूने का पतला लेप लगा देना चाहिए या 25 प्रतिशत का शेड नेट का प्रयोग करना चाहिए तथा पॉलीहाउस का छत एवं साइड वेंटीलेशन खुला रखना चाहिए ऐसा करने से पॉलीहाउस का तापमान घट जाता है।

आर्द्रता

कार्नेशन का पौधा आर्द्रता के प्रति बहुत ही संवेदनशील होता है। इसके लिए वातावरण में 50 से 60 प्रतिशत तक आर्द्रता अच्छी मानी गयी है। इससे कम आर्द्रता होने पर पौधों पर लाल मकड़ी का प्रकोप बढ़ जाता है तथा इससे अधिक आर्द्रता होने पर फफूंदी वाले रोगों का प्रकोप हाने लगता है।

कार्बन डाइऑक्साइड

पौधों की वृद्धि में कार्बन डाइऑक्साइड की भूमिका बहुत ही अधिक है लेकिन इसका उपयोग करने के लिए वातावरण में तापमान एवं प्रकाश का होना बहुत ही जरूरी है। कार्बन डाइऑक्साइड का कम सांद्रता होने पर (100–150 पीपीएम) इसके वृद्धि एवं विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। कार्नेशन के पौधों की बढ़वार कार्बन डाइऑक्साइड की 500 से 1500 पीपीएम सांद्रता में अधिक होती है। इसकी सांद्रता को बनाए रखने के लिए पॉलीहाउस का दरवाजा एवं हवादार खिड़की दिन में 10 बजे तक नहीं खोलना चाहिए।

प्रवर्धन

कार्नेशन का प्रवर्धन बीज एवं व्यावसायिक प्रवर्धन कलम विधि द्वारा किया जाता है।

बीज द्वारा

स्प्रे टाइप कार्नेशन की पौध सामग्री बीज द्वारा नर्सरी में तैयार किया जाता है। उत्तरी भारत में बीज की बुवाई का समय सितम्बर से अक्टूबर, पहाड़ी क्षेत्रों में अगस्त से सितम्बर तथा मार्च से अप्रैल अच्छा रहता है। इसके बीज की बुवाई 1 मीटर चौड़ी तथा 25 से 30 सेंमी. जमीन की सतह से ऊपर उठी क्यारियों में पंक्तियों में 1 सेंमी. गहराई पर करनी चाहिए। बीज के बुवाई के समय नर्सरी का तापमान 16^0 सेल्सियस उचित होता है। क्यारियों की हल्की सिंचाई प्रतिदिन करनी चाहिए तथा उन्हें बरसात से बचाना चाहिए। जब पौधों पर 3 से 4 जोड़े पत्तियाँ निकल आएं तो उनको पॉलीहाउस में लगा देना चाहिए।

कलम द्वारा

स्टैन्डर्ड कार्नेशन का व्यावसायिक प्रवर्धन कलम विधि से किया जाता है। स्प्रे कार्नेशन का प्रवर्धन कलम विधि से भी किया जाता है। स्वस्थ कलम के लिए स्वस्थ्य मातृ पौध का होना बहुत ही जरूरी है। रोग से ग्रसित एवं कमज़ोर कार्नेशन के पौधों से स्वस्थ कलमें प्राप्त नहीं की जा सकती। इसलिए मातृ पौधों की सही देखभाल करनी चाहिए तथा समय–समय पर पोषक तत्वों को पौधों को देते रहना चाहिए। कार्नेशन में जिन पौधों से कलम लेना है उससे पुष्पोत्पादन नहीं करते। कलमें बनाने के लिए अक्तूबर से मार्च का महीना उपयुक्त होता है जबकि ठण्डे स्थानों पर जून माह तक भी कलमें बनाई जा सकती हैं। जब मातृ पौधों पर कलम की लम्बाई 15 से 16 सेंमी. हो जाए तो उस समय कम से कम 3 गांठ व 4–5 जोड़े पत्तियों के साथ कलम को मातृ पौध से काट लेते हैं। स्टैन्डर्ड कार्नेशन के कलम की लम्बाई 10 से 12 सेंमी. तथा स्प्रे कार्नेशन के लिए 8 से 10 सेंमी. लम्बी रखनी चाहिए। मातृ पौधों से सभी नयी कलमों को एक साथ नहीं काटना चाहिए अन्यथा पौधों की बढ़वार पर बुरा असर पड़ता है इसलिए केवल स्वस्थ कलमों को ही काटना चाहिए। जब कमज़ोर कलमें कुछ दिनों बाद स्वस्थ हो जाती हैं तो उनको भी कलम विधि द्वारा पौध सामग्री तैयार करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। विषाणु रोग को एक पौधे से दूसरे पौधों पर फैलने से रोकने के लिए चाकू का प्रयोग कलमों को काटने में नहीं करना चाहिए। कलम विधि द्वारा इसका प्रवर्धन करने के लिए पौधों से कलमों को अंगुली के सहारे तोड़ लेते हैं। इन कलमों को पौधों से अलग करने के बाद गांठ के नीचे तेज ब्लेड से कट लगाते हैं तथा इनको

डाईथेन एम–45 (0.1%) + बाविस्टीन (0.1%) के घोल में लगभग 30–45 मिनट तक डुबोकर रखते हैं। तत्पश्चात् कलमों के निचले भाग को एन.ए.ए. + आई.बी.ए 500 + 250 पीपीएम सान्द्रता के घोल में 10 मिनट के लिए डुबोया जाता है ताकि कलमों में अधिक एवं जल्दी जड़ें आ जायें। कलमों को ऊपर के 5 से 6 पत्तियों के साथ नम बालू या नारियल के छिल्के में कलम से कलम तथा पंक्ति से पंक्ति का फासला 5 सेंमी. रखते हुए 2 से 2.5 सेंमी. गहरा रोपित कर देते हैं। इस प्रकार 1 वर्गमीटर क्षेत्रफल में लगभग 330 कलमें रोपित हो सकती हैं। रोपण के बाद दिन में 2 से 3 बार फुहार सिंचाई विधि से सिंचाई करते हैं। रोपण के 20 से 25 दिनों बाद कलमों में जड़ें निकल आती हैं। मातृ पौधों से स्टैन्डर्ड कार्नेशन में 6 से 8 माह में 400 से 500 तथा स्प्रे कार्नेशन में 500 से 600 कलमें प्रति वर्गमीटर क्षेत्रफल में उत्पादित हो सकती हैं। कार्नेशन के कलम में अच्छी जड़ फुटाव के लिए प्रवर्धन कक्ष का तापमान दिन में 20 से 22^0 सेल्सियस तथा रात में 10 से 12^0 सेल्सियस होना चाहिए। इसकी कलमों को नियंत्रित वातावरण में वर्ष भर लगाया जा सकता है।

कार्नेशन के किस्मों का चुनाव

स्टैन्डर्ड कार्नेशन

इस वर्ग की किस्मों में पौधों पर कुछ सीमित शाखाओं को बढ़ने दिया जाता है तथा अन्य शाखाओं व पुष्प कलियों को शुरू में ही निकाल दिया जाता है। इस वर्ग की प्रमुख किसमें रोमा, व्हाइट कैंडी, व्हाइट पिसा, नोर्डिका लाइटपिंक कैंडी, पिंक पिसा, पिंक कोरसा, बोलोग्ना, पैटरा, एस्ट्रिड, एम्लैटो, मिशैल, रागना इत्यादि हैं।

स्प्रे कार्नेशन

स्प्रे कार्नेशन में फूल गुच्छों में आते हैं इसलिए इसकी मुख्य शाखाओं की शीर्ष कलिका को तोड़कर अन्य सभी शाखाओं व कलिकाओं को बढ़ने दिया जाता है जिससे फूलों की संख्या बढ़ जाती है परन्तु फूलों का आकार छोटा हो जाता है। इस वर्ग की प्रमुख किसमें इन्टा, रोस्सो, कोरटिना, रेडऐरो, एलिस्टर, अरोनी, डार्लिंग, पिंक कारटिना, पिंक बीम, रोशीनी, हैप्पीनेस इत्यादि हैं।

मिट्टी तथा क्यारी की तैयारी

कार्नेशन के लिए उचित जल निकास वाली बलुई दोमट मिट्टी जिसमें जीवांश की अधिक मात्रा हो तथा पी एच मान 6–7 हो, उपुयक्त पायी गयी है। यदि मिट्टी सख्त है तो उसमें सड़ी गोबर की खाद व रेत डालकर इसकी खेती के योग्य बनाया जा सकता है। क्यारियों को बनाने से पहले दो से तीन बार अच्छी तरह मिट्टी की जुताई कर लेनी चाहिए। पहली जुताई करते समय यह ध्यान रखना चाहिए मिट्टी कम से कम 30 से 40 सेंमी. गहरी जुती होनी चाहिए क्योंकि कार्नेशन का क्यारियों में एक बार पौध रोपण करने के बाद 2 से 3 वर्ष तक लगातार पुष्पोत्पादन होता रहता है। मिट्टी की जुताई करने के बाद मृदा परीक्षण के परिणाम के अनुसार सड़ी हुई गोबर की खाद एवं उर्वरक की मात्रा क्यारियों को बनाने से पहले मिट्टी में मिला देना चाहिए। यदि कार्नेशन के लिए नये खेत का चुनाव कर रहे हैं जिसमें पहले कार्नेशन की खेती नहीं की गयी हो तो उस मिट्टी को उपचारित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। पॉलीहाउस में 2 से 3 वर्ष तक लगातार कार्नेशन की खेती की गयी हो तो उसकी मिट्टी को दुबारा कार्नेशन का पौध रोपण करने से पहले उपचारित करना चाहिए। मिट्टी की संक्रामक शुद्धि रसायन विधि से करने के लिए 2.0 प्रतिशत सान्द्रता का फार्मेल्डिहाइड का घोल बना कर ड्रेंच करके पालीथीन से 2–3 दिनों के लिए ढक देते हैं। पालीथीन को मिट्टी की सतह से हटाने के बाद इसे 6–7 दिनों के लिए खुला छोड़ देते हैं। पौध रोपण के एक सप्ताह पहले क्यारियों की हल्की सिंचाई कर देते हैं जिससे फार्मेल्डिहाइड गैस की सान्द्रता कम हो जाए तथा मिट्टी में हल्की नमी बनी रहे। मिट्टी की संक्रामक शुद्धि रसायन विधि के अलावा तेज धूप द्वारा भी कर सकते हैं। इसके लिए गर्मी के दिनों में खेत की जुताई करने के बाद सिंचाई करके पारदर्शी पॉलीथीन से ढक देते हैं जिससे मिट्टी का तापमान काफी बढ़ जाता है जो जीवाणुओं को मारने में काफी कारगर होता है। इस प्रकार यह मिट्टी क्यारियाँ बनाने के लिए तैयार हो जाती हैं। कार्नेशन की व्यावसायिक खेती के लिए 1 मीटर चौड़ी एवं 20 से 25 सेंमी. ज़मीन की सतह से ऊपर उठी सुविधानुसार लम्बी क्यारियाँ बनाई जाती हैं। दो क्यारियों के बीच में 30 से

40 सेंमी. चौड़ा रास्ता भी रखा जाता है ताकि इसमें बैठकर शस्य क्रियाएं आसानी से की जा सके। पौध रोपण करने से पहले क्यारियों को नम कर लेते हैं।

पौध रोपण

कार्नेशन में दो तरह की कलमें, जड़दार एवं बिना जड़ वाली होती हैं। जड़दार कलमों को ही क्यारियों में लगाना चाहिए। जब बाजार से कार्नेशन की कलमों का उपयोग करना हो तो उस समय इन कलमों को तुरन्त पॉलीहाउस में रोपित न करके उसे सामान्य तापमान पर कुछ समय के लिए रख देते हैं क्योंकि कलमों को शीतगृह में कम तापमान पर भण्डारण किया गया रहता है। इसलिए इन कलमों को शीतगृह भण्डारण से निकाल कर तुरन्त पॉलीहाउस में रोपण नहीं करना चाहिए। कार्नेशन का पुष्प उत्पादन वर्ष भर करने के लिए विभिन्न समय में इसका पौध रोपण करते हैं। क्यारियों में पंक्ति से पंक्ति तथा पौध से पौध के बीच फासला 15 सेंमी. रखना चाहिए। पंक्ति में कार्नेशन के पौधों को 2 सेंमी. गहराई में लगाना चाहिए क्योंकि अधिक गहराई रखने पर तना गलन की समस्या आती है। एक वर्गमीटर में लगभग 36–42 पौधे लगाये जा सकते हैं लेकिन अधिक संख्या में पौधे लगाने पर बीमारियों का प्रकोप बढ़ जाता है।

पॉलीहाउस में कार्नेशन पौध रोपण

सिंचाई

पौध रोपण करने के बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए तथा कुछ दिनों बाद कवकनाशी दवा कैप्टान का टपक सिंचाई विधि से ड्रेंचिंग करने से *फ्यूजेरियम* रोग के प्रकोप को रोका जा सकता है। कवकनाशी का ड्रेंचिंग 15 दिन बाद फिर करना चाहिए। पौध रोपण के बाद जब तक पौधे पूर्ण रूप से स्थापित नहीं हो जाते हैं तब तक हल्की सिंचाई करते रहते हैं। पॉलीहाउस में आर्द्रता कम होने पर फुहार सिंचाई विधि से वातावरण में नमी बढ़ा देते हैं। एक मीटर चौड़ी क्यारी में टपक सिंचाई विधि की तीन पाइप लाइन होनी चाहिए व पाइप में 15–20 सेंमी. के फासले पर ड्रिप लगा होना चाहिए। कार्नेशन की सिंचाई टपक विधि से दिन में तीन बार करनी चाहिए। जरूरत के अनुसार ही पानी देनी चाहिए क्योंकि पानी की अधिकता के कारण पौधे मर जाते हैं।

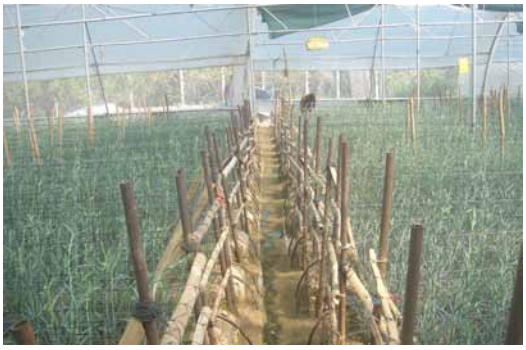

पॉलीहाउस में कार्नेशन हेतु टपक सिंचाई विधि

पोषण

क्यारी बनाने से पूर्व मिट्टी का परीक्षण करा लेना चाहिए। पौध रोपण के तीन सप्ताह बाद 150–200 पीपीएम नत्रजन, फॉस्फोरस एवं 100 पीपीएम पोटाश का घोल प्रतिदिन पौधों को देना चाहिए। नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश के लिए संतुलित घुलनशील उर्वरक जैसे 13:13:13, 15:15:15, 19:19:19, 0:0:51, 13:0:45 (नत्रजन : फॉस्फोरसः पोटाश) बाजार में उपलब्ध है। नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश की मात्रा उपरोक्त उर्वरक की सांद्रता तथा पानी की आवश्यकतानुसार देना चाहिए। सूक्ष्म पोषक तत्वों का इस्तेमाल पत्तियों पर छिड़काव या टपक सिंचाई विधि द्वारा करना चाहिए। वानस्पतिक वृद्धि के दौरान नत्रजन 200 पीपीएम तथा कली बनते समय 150 पीपीएम पोटाश का घोल पौधों को देना चाहिए। पोषक तत्वों की मात्रा को विभाजित करके दिन में 2 से 3 बार देना चाहिए।

शीर्ष नोचन (पिंचिंग)

कार्नेशन के पौधों का शीर्ष नोचन करना बहुत ही महत्वपूर्ण है। शीर्ष नोचन कुछ समय पहले या विलम्ब से करके कार्नेशन के पुष्प उत्पादन की अवधि को घटाया या

बढ़ाया जा सकता है। रोपण के 20 से 25 दिन बाद शीर्ष नोचन करनी चाहिए। शीर्ष नोचन में पौध पर 4 से 5 जोड़ी पत्तियाँ या 4 से 5 गांठ नीचे से छोड़ कर शीर्ष भाग को हाथ से तोड़ देते हैं। ऐसा करने से कम से कम एक पौध पर 4 से 5 नये तना निकलते हैं। इसे एक बार शीर्ष नोचन कहते हैं। यदि 4 से 5 नये तना को पुनः नीचे से 4 से 5 गांठ से पिंच कर दिया जाए तो उसे डबल शीर्ष नोचन कहते हैं। डबल शीर्ष नोचन से पुष्प उत्पादन की उपज बढ़ जाती है लेकिन गुणवत्ता घट जाती है। इसलिए यह देखा गया है, कि अधिकांशतः सिंगल एण्ड हाफ शीर्ष नोचन ही कार्नेशन में की जाती है। इस विधि में सिंगल शीर्ष नोचन के बाद जब 4 से 5 तना आते हैं उनमें से पुनः केवल 2 से 3 तना को शीर्ष नोचन किया जाता है तथा अन्य को पुष्प उत्पादन के लिए छोड़ दिया जाता है। शीर्ष नोचन के उपरान्त कवकनाशी डाईथेन एम–45 या बाविस्टीन का 0.2 प्रतिशत सांद्रता का घोल पौधों पर छिड़क देना चाहिए।

डिशूटिंग

कार्नेशन में शीर्ष शाखा के अलावा लेटेरल शूट बहुत आते हैं। इसके पुष्प डण्डी की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए स्टैन्डर्ड कार्नेशन में सभी लेटेरल शूट को 1 से 2 सेंमी. लम्बा होने की अवस्था में ही हाथ से पकड़ कर निकाल देते हैं। इससे तने को ज्यादा पोषण मिलता है। स्प्रे टाइप कार्नेशन में एपिकल शूट में कली बनते समय ही शीर्ष नोचन कर देते हैं तथा लेटेरल शूट की कलियों को बढ़ने देते हैं।

कार्नेशन में डिशूटिंग

खरपतवार नियंत्रण

पॉलीहाउस में कार्नेशन के पौध रोपण करने के बाद कुछ समय तक खरपतवार का जमाव होता रहता है। खरपतवार को समय–समय पर निकाल देना चाहिए। ऐसा करने से कुछ समय बाद खरपतवार की समस्या पॉलीहाउस में बहुत कम हो जाती है। खरपतवार निकालते समय क्यारियों की गुड़ाई भी कर देनी चाहिए।

सहारा देना (स्टेकिंग)

कार्नेशन के पौधों को उचित सहारा देने की आवश्यकता होती है अन्यथा पुष्प डण्डियां टेढ़ी–मेढ़ी हो जाती है जिससे बाजार में उसका उचित मूल्य नहीं मिल पाता। पौधों को सहारा देने के लिए क्यारियों के चारो ओर मजबूत लकड़ी या लोहे की सरिया गाड़ कर उसमें दो या तीन तहों में प्लास्टिक की जाली का इस्तेमाल करते हैं। ये जाल पुष्प डण्डियों को सीधा रखते हैं। जाल की रस्सियों की बुनाई 10x10 सेंमी. से 12.5x12.5 सेंमी. की होनी चाहिए। जाली की पहली सतह जमीन की सतह से 15–20 सेंमी. ऊपर, पहली एवं दूसरी जाली के बीच में 1 फीट एवं दूसरी तथा तीसरी जाली के बीच में भी 1 फीट का फासला रखना चाहिए। इस पूरी प्रक्रिया को स्टेकिंग कहते है। यह कार्य पौध रोपण के बाद कर लेनी चाहिए। पौधों के बढ़वार के अनुसार जाली को ऊपर–नीचे किया जा सकता है।

कीट पंतग व रोगः कार्नेशन के पौधों पर अनेक प्रकार के कीट पंतग जैसे एफिड, लाल मकड़ी, थ्रिप्स, निमैटोड इत्यादि का प्रकोप होता है। रोग व्याधियों में फफूंद जनक रोग जैसे फ्यूजेरियम विल्ट, स्टेम रॉट, अल्टरनेरिया लीफ स्पॉट ,सेप्टोरिया लीफ स्पॉट व रस्ट प्रमुख हैं। कार्नेशन के पौधों पर विभिन्न प्रकार के विषाणु रोगों का भी प्रकोप पाया गया है।

एफिडः एफिड् हरे रंग का कीड़ा है। जब कार्नेशन में कलियाँ बनने लगती हैं उस समय एफिड का प्रकोप अधिक होने लगता है। एफिड इसके पत्तियों का रस चूसते हैं जिसके कारण पुष्प की गुणवत्ता घट जाती है। यह एक पौधे से दूसरे पौधे तक विषाणु फैलाने का भी कार्य करते हैं। इसकी रोकथाम के लिए मैलाथियॉन 2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर पौधों पर छिड़काव करना चाहिए।

लाल मकड़ीः कार्नेशन में लाल मकड़ी एक बड़ी समस्या

है। यह कार्नेशन की पत्तियों के निचले भाग पर पाये जाते हैं तथा पत्तियों का रस चूस लेते हैं जिसके कारण पत्तियों का हरा भाग पीला होने लगता है। इससे प्रभावित पौधों की पुष्प गुणवत्ता घट जाती है। लाल मकड़ी का प्रकोप पॉलीहाउस में गर्मी के मौसम में सर्वाधिक देखा गया है। इससे प्रभावित पॉलीहाउस की आर्द्रता बढ़ा देनी चाहिए तथा तापमान को कम करने का प्रयास करना चाहिए। इसकी रोकथाम के लिए केलाथेन 1 मिलीलीटर या ओमाइट 0.3 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर पौधों पर छिड़काव करना चाहिए तथा प्रथम छिड़काव के 10 से 12 दिन बाद दूसरा छिड़काव करना चाहिए।

थ्रिप्सः यह हल्के पीले रंग का कीड़ा है। इसकी रोकथाम के लिए रोगर या मैलाथियॉन 2.0 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। इसका प्रकोप अधिक होने पर पुष्प डण्डियों को काटकर जला देना चाहिए ताकि भविष्य में आने वाली पुष्प डण्डियां सुरक्षित हो सकें।

सूत्रकृमि (निमैटोड): कार्नेशन की फसल को विभिन्न सूत्रकृमि नुकसान पहुँचाते हैं। ये कार्नेशन की जड़ों को खाते हैं जिसके कारण पौधों की बढ़वार घट जाती है तथा पुष्प उत्पादन भी कम हो जाता है। कार्नेशन का पौध रोपण करने से पहले मिट्टी को उपचारित कर लेनी चाहिए। इसका नियंत्रण कार्बोफ्यूरान 4 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से क्यारियों में मिलाकर किया जा सकता है। पौध रोपण से पहले क्यारियों में नीम की खली या 10 प्रतिशत दानेदार निमेफॉस का इस्तेमाल करने से भी कुछ हद तक इसको नियंत्रित किया जा सकता है।

बीमारियां

फ्यूजेरियम विल्ट (*फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम* एफ. प्रजाति *डाइएंथी*) : यह कार्नेशन की बहुत ही खतरनाक बीमारी है। फ्यूजेरियम विल्ट गर्म एवं आर्द्रता युक्त वातावरण में बहुत ही तेजी से फैलती है। इस रोग से प्रभावित अधिकांश पौधे मर जाते हैं। यह बीमारी पौधों की निचली पत्तियों को पीला कर देती है तथा बहुत ही कम समय में पूर्ण पौधों पर फैल जाती है। पौध रोपण से पहले पॉलीहाउस की मिट्टी को उपचारित कर देना चाहिए। बीमारी रहित पौधों का ही रोपण करना चाहिए। प्रवर्धन के दौरान रोग रहित मातृ पौधों से ही कलमें तैयार करनी चाहिए। इसकी रोकथाम के लिए बिनोमील 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल कर मिट्टी में ड्रेंचिंग करनी चाहिए। बाविस्टीन नामक कवकनाशी 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर पौधों पर छिड़काव भी करना चाहिए। फ्यूजेरियम विल्ट से प्रभावित पॉलीहाउस में कम से कम 1 वर्ष तक अन्य फसल लेने के बाद ही दुबारा कार्नेशन की पौध रोपण करनी चाहिए।

स्टेम रॉट (*फाइटोफ्थोरा* प्रजाति, *पाइथियम* प्रजाति *राइजोक्टोनिया सोलेनी*): स्टेम रॉट से प्रभावित पौधों के तने ज़मीन की सतह के पास से फट जाते हैं तथा पौधे कुछ समय बाद मरने लगते हैं। यह मिट्टी से फैलने वाली बीमारी है। पौध रोपण करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि कार्नेशन की कलम क्यारियों में बहुत गहराई पर नहीं लगानी चाहिए। इसकी रोकथाम के लिए कैप्टॉन या डाईथेन एम–45, 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर पौधों पर छिड़काव करना चाहिए।

अल्टरनेरिया लीफ स्पॉट (*अल्टरनेरिया डाएन्थी*): यह कार्नेशन के पत्तियों पर फैलने वाली बीमारी है। इससे प्रभावित पौधों की पत्तियों पर काले धब्बे पड़ जाते हैं तथा कुछ समय बाद पत्तियाँ सूखने लगती हैं। इस बीमारी को नियंत्रित करने के लिए कैप्टॉन या डाईथेन एम–45, 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर पौधों पर छिड़काव करना चाहिए। इसके अलावा इस रोग की प्रतिरोधी किस्में जैसे एकार्डी, डेसियो, व्हाइट फीर्दस इत्यादि का चुनाव करना चाहिए।

सेप्टोरिया लीफ स्पॉट (*सेप्टोरिया डाएन्थी*): यह बीमारी भी पत्तियों पर फैलती है। इससे प्रभावित पौधों की पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। इसके धब्बे पत्तियों के निचले भाग पर पूर्ण रूप से दिखाई देते हैं। धब्बों के बीच में काले रंग के छोटे बिन्दु दिखाई देते हैं। पौधों की पत्तियाँ कुछ दिन बाद पोषक तत्त्वों की कमी के कारण सूख जाती हैं। इस बीमारी के बचाव के लिए क्यारियों में नमी बढ़ा देनी चाहिए लेकिन ज़मीन के सतह से ऊपर पौधे के समस्त भाग को सूखा रखना चाहिए। कवकनाशी द्वारा रोकथाम के लिए डाईथेन एम–45 का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर पौधों पर छिड़काव करना चाहिए।

रस्ट (*यूरोमाइसीज डाएन्थी*): इस रोग से प्रभावित पौधों की पत्तियाँ मुड़ जाती हैं। यह अधिकांशतः पॉलीहाउस में कार्नेशन के पौधों को प्रभावित करता है। यह पत्तियों पर चाकलेट जैसा भूरा धब्बा बनाते हैं। रस्ट से प्रभावित पत्तियों से भूरे रंग का पाउडर निकलता है जो दूसरे पौधों को प्रभावित करता है। इसकी रोकथाम के लिए पॉलीहाउस में आर्द्रता कम कर देनी चाहिए तथा सभी वेंटीलेटर को खुला रखना चाहिए। डाईथेन एम–45 का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर पौधों पर छिड़काव करना चाहिए।

विषाणु रोग: कार्नेशन के पौधों पर विषाणु रोगों का बहुत ही अधिक प्रकोप देखा गया है। इसके पौधों पर *कार्नेशन रिंग स्पाट वाइरस, कार्नेशन लैटैन्ट वाइरस, कार्नेशन मोटल वाइरस, कार्नेशन स्टन्ट वायरायड* इत्यादि का सर्वाधिक प्रकोप होता है। यह एफिड द्वारा एक पौधे से दूसरे पौधों तक पहुँच जाता है। इससे बचने के लिए रोग रहित पौध सामग्री का चुनाव करना चाहिए तथा एफिड पर नियंत्रण रखना चाहिए। विषाणु रोगों से प्रभावित पौधों को मातृ पौध के रूप में चुनाव नहीं करना चाहिए।

कायिर्कीय विकार कार्नेशन के कायिकीय विकारों में मुख्यतः कैलिक्स स्प्लिटिंग तथा छल्लेदार अग्रभाग है।

कैलिक्स स्प्लिटिंग

कैलिक्स स्प्लिटिंग कार्नेशन की एक बड़ी समस्या है। इससे प्रभावित पौधों में फूलों की बनावट खराब हो जाती है जिससे गुणवत्ता युक्त पुष्प डण्डियां उत्पादित नहीं हो पाती। इस समस्या का मुख्य कारण संभवतः तापमान में गिरावट, पौधों की अधिक सघनता तथा आवश्यक पोषक तत्त्वों की असमान उपलब्धता है। इस समस्या से बचने के लिए जब पुष्प के कैलिक्स खिलने लगते हैं उस समय कलियों पर रबर बैंड लगा देना चाहिए। कलियों पर रबर बैंड सबसे अधिक मोटे स्थान पर लगाना चाहिए। इस समस्या के समाधान हेतु प्रतिरोधी किस्में लगाई जा सकती हैं।

पुष्प डण्डी की कटाई

स्टैन्डर्ड कार्नेशन की कली में जब रंग दिखाई देने लगे तथा बाहर की पंखुड़ियाँ खिलना शुरू हो जाए तभी पुष्प डण्डियों की कटाई करनी चाहिए। स्प्रे टाइप कार्नेशन में पुष्प डण्डियों को उस समय काटना चाहिए जब एक

पॉलीहाउस में कार्नेशन के पुष्प की कटाई

पुष्प डण्डी पर कम से कम एक कली खिल गई हो तथा अन्य कलियों में रंग दिखाई देने लगे। पुष्प डण्डियों को परिपक्वता से पहले काट लेने पर इसकी कलियाँ पूर्ण रूप से नहीं खिल पातीं। पुष्प डंडियों को तीन पत्तियों का जोड़ा पौधों पर छोड़कर नीचे से काटना चाहिए। ऐसा करने से भविष्य में पुष्प की उपज अधिक आती है। पुष्प डण्डियों को काटने के बाद बाल्टी में पानी के अन्दर रखते हैं तथा जब बाल्टी भर जाए उसके उपरान्त बाल्टी को ठण्डे स्थान पर रख देते हैं। पुष्प डण्डियों की कटाई सुबह या सायंकाल करनी चाहिए। कार्नेशन के फूल इथीलीन गैस के कारण जल्दी खराब हो जाते हैं। इसलिए फूलों को अधिक समय तक तरोताजा बनाये रखने के लिए 8–हाइड्रोक्सी क्यूनोलीन सिटरेट 300–400 मि.ग्रा./ली. + 4 प्रतिशत चीनी के घोल में डालकर भण्डारण करना चाहिए।

उपज

स्टैण्डर्ड कार्नेशन में स्प्रे टाइप कार्नेशन से कम उपज होती है। कार्नेशन में पुष्प की उपज किस्मों, पौधा रोपण का समय, पौध की सघनता, पुष्प उत्पादन की अवधि, पौधों की पिंचिंग करने की विधि इत्यादि पर निर्भर करती है। यह देखा गया है कि स्टैन्डर्ड कार्नेशन में 1 वर्ष के दौरान दो बार पुष्प उत्पादन होने पर 300 से 350 पुष्प डण्डियाँ प्रति वर्गमीटर क्षेत्रफल के दर से उत्पादित होती हैं। कार्नेशन का पौध रोपण करने के बाद पुष्प उत्पादक कम से कम 5–6 बार पुष्प डण्डियों की कटाई कर सकते हैं। इसके उपरान्त पुनः दुबारा कार्नेशन का पौध रोपण करना चाहिए।

पुष्प डण्डियों का रखरखाव

कार्नेशन के पुष्प को लम्बाई के आधार पर 40, 50, 60, 70, 80, 90, 100 सेंमी. लम्बी पुष्प डण्डियों के विभिन्न वर्गों

में विभाजित कर लेते हैं। इसके उपरान्त वर्ग के अनुसार 20 पुष्प डण्डियों का एक गुच्छा बनाते हैं। पुष्पों का गुच्छा बनाने के बाद पुष्प डण्डियों में नीचे रबर बैंड लगाते हैं तथा पुष्पों की सुरक्षा हेतु सभी पुष्पों को प्लास्टिक की सीट में रैप कर देते हैं। इस प्रकार तैयार किये गये कार्नेशन के पुष्प गुच्छों का नीचे का 4 से 5 सेंमी. भाग पानी में तब तक रखते हैं जब तक कि बाजार भेजने के लिए पैकिंग नहीं किया जाता। कार्नेशन के फूलो की पैकिंग के लिए गत्ते के बने बक्सों का प्रयोग किया जाता है जिनका आकार 122X50X30 सेंमी. होता है। ये बक्से कारूगेटिड गत्ते के बने होते हैं जो फूलों को कम से कम नुकसान पहुँचाते है। एक बाक्स में कार्नेशन के लगभग 20 से 25 पुष्प गुच्छों को पैक करके बाजार भेजा जाता है।

फूलों के गुच्छों की परतों के बीच अखबार का प्रयोग किया जाता है। इन फूलों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिए रेफ्रीजरेटिड वाहनों का प्रयोग करना चाहिए तथा तापमान 2–4^0 सेल्सियस पर रखना चाहिए। ऐसा करने से पुष्प अधिक समय तक तरोताजा बने रहते हैं।

कार्नेशन के पुष्प गुच्छे

दमस्क गुलाब की उन्नत खेती

[1]दिपेन्द्र कुमार, [2]प्रियंका सुर्यवंशी एवं [3]वाई.वी.सिंह

[1]सी.एस.आई.आर.–केन्द्रीय औषधीय एवं सुगंध पौधा संस्थान अनुसंधान केन्द्र, पन्तनगर–263149,उत्तराखण्ड
[2]सी.एस.आई.आर.–केन्द्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान,लखनऊ–226015,उत्तर प्रदेश
[3]भाकृअप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

परिचय

गुलाब एक सुगन्धित पौधा है तथा इसमें बहुत से औषधीय गुण पाये जाते है। गुलाब के पौधे की जड़ से लेकर पत्ती फूल तथा तना आदि सभी भाग औषधीय गुणों से भरपूर होते है। गुलाब की जड़े पेट से सम्बन्धित रोगों जैसे अल्सर, दस्त आदि रोगों के इलाज में काम आती है।

गुलाब की पत्तियां चर्म रोगों जैसे– फोड़ा, फुंसी, घाव के ठीक करने के साथ बवासीर जैसे भयानक बीमारी के इलाज में भी उपयोग में लायी जाती है। गुलाब के फूलो का उपयोग कई बीमारियों जैसे– उच्च रक्तचाप, दस्त, अस्थमा, खासी, बुखार, अनिद्रा, घबराहट आदि बीमारियों के इलाज के उपयोग में भी लाया जाता है। साथ ही साथ गुलाब के फूलों से सुगन्धित तेल भी प्राप्त किया जाता है। जिसका उपयोग अरोमा थेरेपी व कॉस्मेटिक सामग्री को बनाने में उपयोग में लाया जाता है। गुलाब के तेल से सुगन्धित इत्र (परफ्यूम) बनाया जाता है। जिसकी भारतीय बाजार से लेकर अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में अच्छी खासी कीमत प्राप्त होती है। सुगन्धित गुलाब के फूलों से गुलकंद बनाया जाता है जो कि माउथ फ्रेशनर का काम करता है। मुँह की दुर्गध को दूर कर पाचन क्रिया मे सहायक होता है एसिडिटी की समस्या का समाधान करता है, सुगन्धित गुलाब के फूलों से गुलाब जल प्राप्त किया जाता है जोकि बहुत ही उपयोगी होता है। गुलाब जल का उपयोग चेहरे पर कील मुहाँसे आदि को दूर करता है। साथ–साथ घर में इसका उपयोग मक्खन, मिठाई, पेस्ट्री केक, आदि के स्वाद बढ़ाने में किया जाता है।

गुलाब एक बहु उद्देश्य उपयोगी पौधा है। सुगन्धित और औषधीय उपयोगो के साथ –साथ इसको सजावटी पौधे के रूप में भी घरों, बगीचो, आफिस के गार्डन आदि में लगाया जाता है जोकि प्रायः गुलाबी, पीले, काले, सफेद, आदि रंगों के होते है। इससे गार्डन घरों की शोभा बढ़ जाती है। 150 प्रजातियाँ विश्व भर में पायी जाती है। भारत में गुलाब की 34 जातियाँ पायी जाती है। चार जातियों को छोड़ कर 30 जातियों का कोई महत्व नहीं है। उपरोक्त जातियां सजावटी पौंधे अथवा जंगली पौंधो के रूप में उगती हैं, जिसमें से केवल चार जातियों का गुलाब सुगंध, ऐरोमाथेरेपी इत्यादि मे उपयोग किया जाता है।

क. *रोजा सेन्टीफोलिया* एल

ख. *रोजा मासकेटा* हार्क

ग. *रोजा दमेशिना*

घ. *रोजा बारबोनियाना* डेस्प.

वर्तमान में भारत मे गुलाब के तेल का उत्पादन लगभग 9 कु. है। अन्य देशों का लगभग उत्पादन 3–6 टन तक है। भारत में हाथरस, एटा, बलिया, कन्नौज, कानपुर, फरूखाबाद, गाजीपुर, राजस्थान के उदयपुर (हल्दी घाटी क्षेत्र), चित्तौड़गढ, जम्मू और कष्मीर, हिमाचल व उत्तराखण्ड के क्षेत्रों में करीब 2000 है. भूमि में दमस्क गुलाब की खेती की जाती है। दमस्क रोज की खेती विष्व के – बुल्गारिया, टर्की, रूस, फ्रांस, इटली, और चीन से इत्यादि देशों मे की जाती है।

जलवायु– सुगन्धित गुलाब उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र का पौधा है, इसकी खेती के लिए समुचित सुर्य प्रकाश की आवश्यकता होती है। जहां जल निकास की लिए उचित व्यवस्था हो उन स्थानों पर गुलाब की खेती सफलता पूर्वक की जा सकती है।

भूमि की तैयारी – अप्रैल–मई माह में जुताई करके वर्षा आने तक खेत को खुला छोड़ देना चाहिए। सुगन्धित गुलाब की खेती के लिए बलुई, दोमट व हल्की रेतीली भूमि

उपयुक्त मानी जाती है। भूमि में जल निकास की उचित व्यवस्था हो तो गुलाब की खेती की जा सकती है, भूमि का pH मान 6 से 7.5 तक होना चाहिए। रोपाई करने से पहले खेत को 3–4 बार जोत कर भुरभुरा व खरपतवार रहित कर लेना चाहिए व अन्तिम जुताई से पूर्व 10–15 टन प्रति है. (FYM: सडी हुई गोबर की खाद) या 5 टन प्रति है. वर्मी कमपोस्ट (केंचुआ खाद) को खेत में मिला देना चाहिए जिससे फसल की बढ़वार अच्छी होती है व फूलों का उत्पादन अत्याधिक प्राप्त किया जा सकता है।

प्रजातियाँ– सीमैप द्वारा दमस्क गुलाब की दो प्रजातियाँ नूरजहाँ और रानीसाहिबा विकसित की गई हैं।

नूरजहाँ में तेल प्रतिशत –0.025–0.030 (उपोष्ण) 0.035–0.040 (शीतोष्ण) फूल उत्पादन क्षमता 25–30 कु./है. व 30–35 कु./है.

रानीसाहिबा मैदानी क्षेत्रो के लिए विकसित नई किस्म है। तेलः 0.04–0.05 प्रतिशत उपजः 30–40 कु./है.

सस्य क्रियायें

पौध सामग्री की तैयारी – कलम बनाने का उचित समय दिसम्बर माह है। कलम उन्ही पौधों से बनाई जाये जिसमें प्रतिवर्ष फूल आते हो। कलम की मोटाई पेन्सिल के बराबर और लम्बाई 20–25 सेमी. एवं कम से कम 5–6 आँखे हो। कलम बनाने वाली शाखा की उम्र एक वर्ष से कम नही होनी चाहिए। कलम के कटे हुए आधारीय सिरे को रूटेक्स 200 पी.पी.एम. के घोल से उपचारित करना चाहिए। इससे जडो का विकास शीघ्र होता है। उपचार के बाद कलमों को गड्ढे में दबा देते है। कलमों का सिरा नमी के सम्पर्क में रहे और गड्ढे में वायु प्रवेश न हो। 20–25 दिन बाद कलमों को 10X25 सेमी. की दूरी पर रोपकर तुरन्त सिंचाई कर देनी चाहिए। ये कलमें जुलाई–अगस्त में रोपाई के लिए तैयार हो जाती है।

रोपाई– खेत की दो से तीन बार मिट्टी पलट हल से जुताई करके तथा एक बार रोटावेटर करके खेत को तैयार कर लेना चाहिए। तब रोपाई योग्य तैयार खेत में गुलाब की जड़ युक्त कलमों (रूटेड कटिंग) की रोपाई पौधे से पौधे तथा लाइन से लाइन की दूरी (1x1) मीटर की दूरी पर 50 सेमी व्यास व 50 सेमी. गहराई वाले गड्ढो मे रोपाई कर देते है। गोबर की खाद व मिट्टी से गड्ढो को बन्द कर देते है। ऐसा करने से फूलों का उत्पादन अत्यधिक मात्रा में होता है व पौधे की अति शीघ्र बढवार प्रारम्भ हो जाती है।

खाद एवं उर्वरक– सुगन्धित गुलाब की अच्छी पैदावार लेने के लिए गोबर की सड़ी खाद (FYM) या कोई भी जीवांश खाद का उपयोग करना अति आवश्यक है, इससे पौधो की बढ़वार अच्छी होती है तथा किल्ले अत्यधिक मात्रा में निकलते है। फलस्वरूप फूल बड़े व आकर्षक आते है, और उत्पादन भी बढ़ जाता है और किसानों का आय भी बढ जाती है साथ ही साथ नत्रजन 100 कि.ग्रा., पोटाश 80 कि.ग्रा. फास्फोरस 60 कि.ग्रा. प्रति है. उपयोग करनी चाहिए।

सिंचाई– सगुन्धित गुलाब का जड़ युक्त कलम मुख्य खेत में लगाने के तुरन्त बाद पानी देना चाहिए। इसके बाद 25–30 दिन के अन्तराल पर पानी देना चाहिए, यदि भूमि बलुई है और भूमि जल्दी ही सूख जाती है तो 25–30 दिन से पहले पानी दे देना चाहिए। गर्मी के दिनो में अत्यधिक पानी की आवश्यकता होती है परन्तु बरसात में पानी देने की आवश्यकता लगभग नही पड़ती है ।

खरपतवार नियंत्रण– सुगन्धित गुलाब की रोपाई के बाद पहले वर्ष में खरपतवार प्रबन्धन की अत्यधिक आवश्यकता होती है, जिसके लिए निराई–गुडाई करना अति आवश्यक है इसके लिए 2–3 निराई नवंम्बर से जनवरी तक कर देते है और जब पौधो की बढ़वार प्रारम्भ हो जाती है तब कम से कम 2–3 गुड़ाई करके खरपतवार का नियंत्रण करते है। रोपाई के दूसरे वर्ष मे एक या दो गहरी गुड़ाई करके खरपतवार को नियंत्रित किया जा सकता है।

छँटाई– सुगन्धित गुलाब के फूल व तेल के उत्पादन के लिए जमीन से लगभग 15–20 सेमी ऊपर से प्रथम वर्ष में दिसम्बर माह में सम शीतोष्ण क्षेत्रों में पौधें को ऊपर से काट दिया जाता है। इसके बाद पौधों के चारों तरफ गहरी गुड़ाई करके लगभग एक माह के लिए लिंचिग के लिए छोड देना चाहिए। शीतोष्ण पौधों की हल्की छटाई की जाती है तथा रोग ग्रसित 5 वर्ष पुरानी शाखाओं को वर्ष भर में काटतें रहना चाहिए और कटे हुए स्थान पर किसी भी फफूँदनाशी दवा को लगा देना चाहिए।

सुगन्धित गुलाब में लगने वाले रोग व कीट–

रोग

सुगन्धित गुलाब में कई प्रकार के रोगों का प्रकोप होता है। अगर इनका सही समय पर उपचार न किया जाये तो फसल की उत्पादकता कम हो जाती है।

उक्ठा रोग (डाई बैक)– इस रोग में पौधों की शाखाऐं ऊपर से नीचे की ओर सूखने लगती है और धीरे–धीरे पौध ाा सूख जाता है। यह रोग छँटाई से बने घावों पर कवको के आक्रमण से होता है।

रोक थाम–ताँबा युक्त कवकनाशी का लेप कटे हुए स्थान या धाव पर लगाने से इस रोग से पौधों को बचाया जा सकता है।

काला धब्बा रोग– इस रोग में पौधों की पत्तियों पर काले–काले धब्बे (बिन्दी के आकार) बन जाते है जिसके कारण पत्तियाँ समय से पहले गिर जाती है। जिससे पौधे की बढ़वार उत्पादन पर बुरा प्रभाव पडता है।

रोक थाम– इस रोग से पौधों को बचाने के लिए मैन्कोजेब (0.2 प्रतिशत) के घोल का स्प्रे करना चाहिए।

चूर्णित फफूँदी रोग– रोग ग्रस्त पौधों की कोमल पत्तियों पर सफेद रंग का पाउडर फैल जाता है और पत्तियां ध ीरे–धीरे सूख कर गिरने लगती है।

रोक थाम– मैन्कोजेब का स्प्रे 0.2 प्रतिशत की दर से करना चाहिए।

किट्ट रोग– (रस्ट) इस रोग के प्रभाव से पत्तियों पर जंगनुमा धब्बे दिखाई देते है। धब्बे फटने के बाद नांरगी रंग का चूर्ण पत्तियों पर बिखर जाता है जिससे पत्तियां सूखने लगती है।

रोक थाम– 0.2 प्रतिशत फफूँदीनाशी दवाओं का स्प्रे करना चाहिए जैसे मैन्कोजेब, बाविस्टीन आदि।

कीट

दमस्क गुलाब मे प्रायः निम्नलिखित कीटों से अत्यधि ाक नुकसान होता है।

दीमक– यह कीट प्रायः सेल्युलोज को खाता है और लकडी में अत्यधिक पाया जाता है। इसी कारण से इस कीट का प्रकोप असिंचित या कम सिचाई वाले क्षेत्रों मे होता है। यह कीट पौधों की जड़ो एवं तनों को काट देता है और पौधे सूख जाते है।

रोक थाम– बाज़ार में उपलब्ध दीमकनाशी, कीटनाशक अथवा नीमखली के तेल का स्प्रे से इस कीट को रोका जा सकता है, समुचित सिंचाई करके भी इस कीट को रोका जा सकता है।

तना छेदक– इस कीट की सूड़ी पौधों को अधिक नुकसान पहुचाती है, सूड़ी पौधे के तने को शीर्ष से काट कर पौधे के तने को खोखला कर देती है। फलस्वरूप पौधे मुरझाकर सूख जातें है।

रोक थाम– इस सूड़ी की रोक थाम के लिए मोनोक्रोटोफोस का 0.2 प्रतिशत का स्प्रे करना चाहिए या वायरस युक्त कीटनाशी (हेलियोकिल) 0.5 एम.एल./ली. पानी का छिड़काव प्रभावकारी रहता है।

माहू कीट– इस कीट का प्रकोप बसन्त ऋतु मे गुलाब की कलियो को हानि पहुँचाता है।

रोक थाम–इसकी रोक थाम के लिए डाईमेथोएट 0.5 प्रतिशत का स्प्रे लाभकारी होता है।

फूलों की चुनाई तथा उपज– सुगन्धित गुलाब की सफल खेती के फूलों की चुनाई के समय को ध्यान में रखना अति आवश्यक है, इसका सीधा प्रभाव उच्च गुणवत्ता युक्त फूल के तेल उत्पादन पर पड़ता है। उच्च गुणवत्ता युक्त फूल व तेल के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखना अति आवश्यक है।

- फूलों की चुनाई सुबह 7 बजे से पहले कर लेनी चाहिए यदि मौसम में बादल हो तो फूलों की चुनाई 10 बजे तक भी की जा सकती है। ऐसा करने से तेल का उत्पादन व सुगन्ध की गुणवत्ता बढ़ जाती है।
- उपोष्ण क्षेत्रों में फूल दो बार आते है। (1) मध्य मार्च से मध्य अप्रैल तक फूल आते है। (2) 15 सितम्बर से

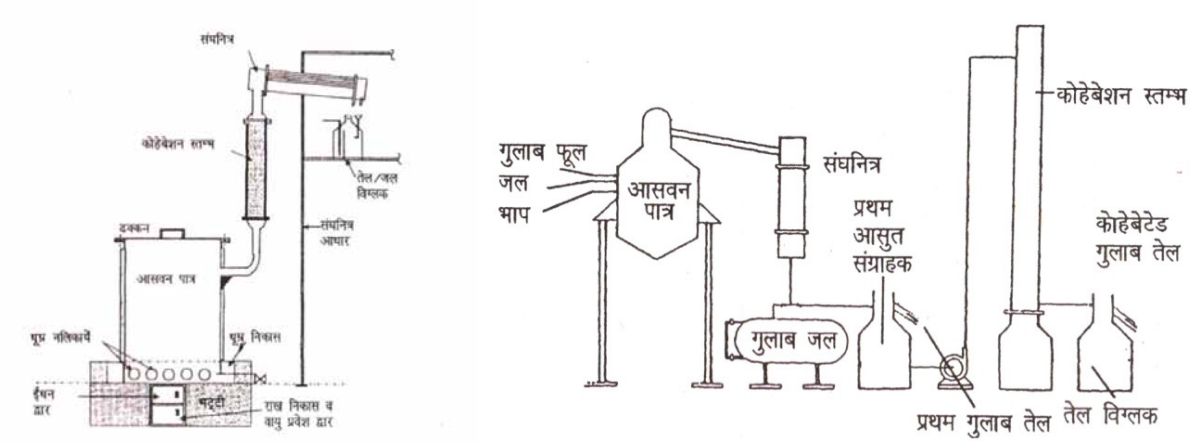

(क) (ख)

चित्र 1: (क)– सीमैप द्वारा विकसित गुलाब क्षेत्र उन्नत आसवन इकाई (ख) ब्वायलर द्वारा चालित गुलाब आसवन सयंत्र

नवम्बर के प्रथम सप्ताह में हल्की बहार आती है।

- शीतोष्ण क्षेत्रों में मध्य मई से जून के प्रथम सप्ताह तक फूल आते है।
- अच्छी उर्वरा व उपजाऊ वाले उपोष्ण क्षेत्रों मे 2.5–3 टन/है. जबकि शीतोष्ण क्षेत्रों में 3.5–4 टन/है. फूल प्राप्त होते है।

आसवन व तेल उत्पादन– दमस्क गुलाब का तेल ताजे चुने फूलों का आसवन जल या भाप आसवन विधि से प्राप्त किया जाता है। जल आसवन विधि का उपयोग लघु व मध्यम स्तर के आसवन के लिए अति उपयोगी है, सीमैप द्वारा गुलाब के आसवन के लिए एक उन्नत जल आसवन इकाई (सिम आसवानिका) तैयार की गई है जो की मध्यम किसानो के लिए अति आवश्यक है।

वही उच्च स्तर पर गुलाब के फूलो का आसवन करने के लिए भाप आसवन इकाई अति आवश्यक है।

तेल उपज– सुगन्धित गुलाब की खेती में तेल उत्पादन दूसरे वर्ष से प्रारम्भ होता है, प्रथम वर्ष मे पौधों की वानस्पतिक वृद्वि होती है इसलिए पहले वर्ष में फूल कम आते है जिनका आसवन करना लाभकारी नही होता है, दूसरे वर्ष मे फूल अधिक आते है और लगभग 0.80 किग्रा. सुगन्धित तेल प्राप्त होता है इस प्रकार तीसरे वर्ष मे सुगन्धित तेल का उत्पादन 0.80 किग्रा. से 1.0 किग्रा. तक होता है और 4 से 7 वे वर्ष मे भी लगभग इतना ही उत्पादन होता है। सांतवे वर्ष के बाद पौधों से फूलों का उत्पादन कम होने लगता है फलस्वरूप सुगन्धित तेल का उत्पादन भी कम हो जाता है। इसलिए लगभग 9–10 वर्ष के बाद दूसरे खेत मे नये पौधो को लगाना चाहिए।

सुगन्धित गुलाब की खेती में 3 वर्षो तक का अनुमानित आय व्यय का विवरण निम्नलिखित तालिका में :–

कम स.	वर्ष	अनुमानित लागत (रू.)	तेल उत्पादन (किग्रा.)	अनुमानित औसत मूल्य (रू.) प्रति किग्रा0	अनुमानित लाभ (रू.)
1.	प्रथम वर्ष	98,000/-	–	–	98,000/- (घाटा)
2.	द्वितीय वर्ष	70,000/-	0.8	7,00,000/- से 8,00,000/-	5,60,000/- से 6,40,000/-
3.	तृतीय वर्ष	70,000/-	1.0	7,00,000/- से 8,00,000/-	7,00,000/- से 8,00,000/-
	योग	**2,38,000/-**	**1.8**	**7,00,000/- से 8,00,000/-**	**12,60,000/- से 14,40,000/-**

भिन्डी की खेती से किसान भाई अधिक मुनाफा कैसे लें?

विजयभान सिंह, डॉ. जे.पी.एस. डबास एवं पी पी मौर्य

कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानांतरण केंद्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली–12

भिन्डी जायद एवं खरीफ मौसम की प्रमुख सब्जी फसल है जो भारतवर्ष के सभी राज्यों में प्रमुखता से उगाई जाती है, भिन्डी का उत्पादन की दृष्टि से विश्व में भारत का प्रथम स्थान है। दक्षिण भारत में भिन्डी की खेती रबी के मौसम में भी की जाती है इसका मुख्य कारण वहां की जलवायु नम एवं गर्म होती है। हमारे देश के लगभग 498 हजार हेक्टेयर क्षेत्रफल में उगाई जाती है जिससे लगभग 5830 हजार टन प्रति वर्ष भिन्डी का उत्पादन किया जाता है। भिन्डी की तने व जड़ों का प्रयोग गन्ने के रस को साफ करने में भी किया जाता है।

भिन्डी एक बहुत ही लोकप्रिय एवं पौष्टिक सब्जी है जिसमें उर्जा– 35 कैलोरी, लौह 1.5 मिलीग्राम ,कैल्शियम 66 , वसा 0.2 ग्राम , कार्बोहाईड्रेट 6.4 ग्राम, विटामिन। 88 I-U, B एवं C –13 मिलीग्राम एवं प्रोटीन 1.9 ग्राम मात्रा पाई जाती है।

किसान भाई वैज्ञानिक ढंग से नई किस्मों एवं तकनीकों को अपनाकर यदि भिन्डी की खेती करते हैं तो वे अपने फसल का उच्च गुणवत्ता युक्त अधिक उत्पादन ले सकते हैं और इसके साथ ही साथ अपने लागत खर्च को भी कम करते हुए अधिक से अधिक आमदनी प्राप्त कर सकते हैं।

भूमि (मिट्टी) एवं जलवायु

भिन्डी की फसल के लिए दीर्घ अवधि का गर्म व नम वातावरण अच्छा माना जाता है। अच्छे बीज जमाव के लिए 20 से 30 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान उपयुक्त रहता है। 16 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान से नीचे बीज का जमाव कठिन हो जाता है। भिन्डी की फसल को जीवांश युक्त दोमट किस्म की मिट्टी जिसमें जल निकास का उचित प्रबंधन हो अच्छी रहती है। सामान्य रूप से मिट्टी का पी एच मान 6 से 7.8 उपयुक्त रहता है। किसान भाई फसल लगाने से पहले मिट्टी की जांच अवश्य करवा लें क्योकि इससे खेत में कौन से पोषक तत्वों की कमी है और इसके अलावा मिट्टी के क्षारीयता व अम्लता का पता भी चल जाता है। किसान भाई मिट्टी की जांच के पश्चात उर्वरकों का प्रयोग करें।

बीज का चयन तथा बीज उपचार

उकठा, तना गलन, जड़ गलन, झुलसा, चूर्णिल आसिता जैसे रोगों के रोकथाम के लिए 2.5 ग्राम बावस्टिन या कैप्टान से प्रति किलोग्राम बीज के दर से उपचारित करके बुआई करने से काफी रोगों का रोकथाम हो सकता है अथवा ट्राइकोडर्मा विरिडी 5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से हम उपचारित कर सकते हैं । बीज का उपचार जीवाणु खादों से भी करना अच्छा रहता है इससे लागत भी कम होती है व बीज का जमाव भी अच्छा होता है । जीवाणु खादों में फास्फोरस घुलनशील जीवाणु टीका व अजोटोवेक्टर जीवाणु खाद टीके का प्रयोग करना चाहिए।

बीज को उपचारित करने से फसल में रोगों से सुरक्षा के साथदृसाथ फसल की उत्पादन क्षमता भी बढ़ जाती है। किसान भाइयों को हमेशा स्वस्थ और प्रमाणित बीजों का ही प्रयोग करना चाहिए

बुआई – बुआई से पूर्व खेत की 2 –3 बार गहरी जुताई करनी चाहिए इसके बाद खेत को समतल कर लेना चाहिए इसके साथ ही ध्यान रखना चाहिए की समुचित जल निकास का भी प्रबंध हो। बुआई के लिए हम तीन विधियों को प्रयोग में ला सकते हैं।

1. नाली विधि – खेत के तैयारी के पश्चात् एक मुख्य नाली के साथ साथ अन्य नाली बनाई जाती है जिसमें नाली से नाली के बीच की दूरी 2 फीट रखी जाती है बीज नाली के दोनों किनारों पर दो पंक्तियों में बुआई करें, और

बीज से बीज की दूरी 5 से 6 इंच तक रख सकते हैं बीज की गहराई 1 से 1.5 इंच तक रखते हैं।

2. मेड़ बिधि– इस विधि में मेड़ बनाई जाती है मेड़ों के बीच की दूरी 2 फीट रखी जाती है और दो मेड़ के बीच में सिंचाई करने के बाद जब पैर थमने लग जाते हैं तब इसमें बीज की बुआई करते हैं बीज की गहराई नाली विधि के समान ही होती है मेड के दोनों किनारों पर हाथ से एक एक बीज की बुआई की जाती है।

3. मल्चिंग विधि – ड्रिप सिंचाई सुविधा को अमल में लाकर मल्चिंग विधि से भिन्डी की बुआई करते हैं इस विधि में बेड बनाया जाता है जिस पर 25 माइक्रो मीटर की मल्चिंग प्लास्टिक शीट बिछाई जाती है जिसमें समान दूरी पर छिद्र होता है जिसमें एक एक बीज की बुआई की जाती है, बीज की गहराई 1 से 1.5 इंच एवं बीज से बीज की दूरी 5 से 6 इंच तक रख सकते हैं। मल्चिंग विधि से खेतों में खर पतवार में कमी आ जाती है। इस विधि को अपनाने से 15 से 16 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत होती है, तथा कीड़ों के प्रकोप में भी कमी आती है द्य यदि अगेती भिन्डी की फसल लेना है तो बीज 24 घंटे भीगा कर और उसे उपचारित करके ही बुआई करना चाहिए।

बुआई का समय एवं बीज की मात्रा – भिन्डी की फसल को वर्ष में दो बार उगाया जा सकता है। ग्रीष्मकालीन भिन्डी की फसल उगाने के लिए फरवरी माह के प्रथम सप्ताह से मार्च तक आसानी से लगा सकते हैं। इस समय की बुआई हेतु 15 से 18 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। वर्षा ऋतु के बुआई हेतु मई एवं जून माह उपयुक्त रहता है। इस समय की बुआई के लिए 10 से 15 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। भिन्डी की संकर किस्मों के लिए 5 से 6 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है।

भिन्डी की उन्नतशील किस्में – भिन्डी की फसल से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए हमें उन्नत किस्मों का चयन करना आवश्यक है। पूसा संस्थान द्वारा विकसित की गई नई किस्म पूसा ए – 5 – को दोनों मौसम में लगा सकते हैं वर्षा के मौसम के लिए यह एक उपयुक्त किस्म है द्य यह पीत शिरा मोजैक विषाणु रोग प्रतिरोधी किस्म है फल आकर्षक गहरे हरे रंग के पाँच धारियों वाले,चिकनी सतह एवं मध्यम लंबाई (8–12 सेमी.) के होते हैं बुआई के 40 दिन बाद फलियाँ तुडाई के योग्य हो जाती हैं। इसकी पैदावार 125 से 180 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।

पूसा ए–4 – यह भिन्डी की एक उन्नत किस्म है यह पीतशिरा रोग (मोजैक) व फल छेदक के लिए सहिष्णु है फल मध्यम आकार के गहरे हरे ,कम रेशे वाले तथा आकर्षक होतें हैं। बुआई के 45 50 दिन बाद फलियाँ तुडाई के योग्य हो जाती हैं। इसकी पैदावार 100 से 150 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।

परभनी क्रांति– यह किस्म येलो मोजैक रोग के प्रति सहिष्णु है और 45 से 50 दिन के बाद फलियाँ आना शुरू हो जाती हैं फली गहरे हरे रंग एवं 18 सेमी. लम्बी होती है। इसकी पैदावार 100 से 110 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।

पंजाब–7– यह किस्म पीत शिरा रोग के प्रति प्रतिरोधी है फलियाँ गहरे हरे रंग एवं मध्यम आकार की होती हैं इस किस्म में भी 45 से 50 दिन के बाद फलियाँ आनी शुरू हो जाती हैं । इसकी पैदावार 80 से 120 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।

हिसार उन्नत – यह किस्म वर्षा एवं ग्रीष्म दोनों मौसम के लिए उपयुक्त है पौधे की लम्बाई 90 से 120 सेंटीमीटर होती है और इसके इंटरनोड काफी पास पास होते हैं पहली तुडाई 45 दिन बाद शुरू हो जाती है। इसकी पैदावार 120 से 130 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।

अर्का अनामिका – यह किस्म येलो मोजैक रोग के प्रति सहिष्णु है, फलियाँ गहरे हरे रंग की रोम रहित और मुलायम होती है।45 से 50 दिन के बाद फलियाँ आना शुरू हो जाती हैं इसकी पैदावार 120 से 150 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।यह किस्म वर्षा एवं ग्रीष्म दोनों मौसम के लिए उपयुक्त है।

वर्षा उपहार – यह किस्म येलो मोजैक रोग के प्रति सहिष्णु है पौधे की ऊंचाई 90 से 120 सेंटीमीटर तक होती है, फलियाँ गहरे हरे रंग की और मुलायम होती है और 50 दिन के बाद फलियाँ आना शुरू हो जाती है। इसकी

पैदावार 90 से 100 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।यह किस्म वर्षा एवं ग्रीष्म दोनों मौसम के लिए उपयुक्त है।

भिन्डी की संकर किस्में – डी वी आर –1 (शीतल उपहार), डी वी आर –1 (शीतलज्योति) डी वी आर–4 (काशी महिमा), आई आई वी आर –11 (काशी लीला ,(काशी मोहिनी ,गुजरात भिन्डी संकर 2,एमवीएच–142 जिन्हें लगाकर किसान भाई प्रति हेक्टेयर 150 से 200 क्विंटल उपज प्राप्त कर सकते हैं।

कुछ अन्य किस्में हैं जो निजी कम्पनियों से भी प्राप्त किये जा सकते हैं ,जो वर्षाकालीन एवं ग्रीष्मकालीन भिन्डी की फसल के लिए उपयुक्त है और अच्छी उपज भी देती हैं।

खाद एवं उर्वरक – भिन्डी की अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए हरी खाद या प्रति हेक्टेयर क्षेत्रफल में 15 से 20 टन गोबर की खाद का प्रयोग बुआई से 20 से 25 दिन पहले करना चाहिए। 50 किलोग्राम (डी.ए.पी) डाई आमोनीयम फोस्फेट एवं 40 किलोग्राम म्यूरेटऑफ पोटाश बुआई से पूर्व मिट्टी में मिलाना चाहिए। 100 किलोग्राम यूरिया की मात्रा को थोड़े–थोड़े हिस्सों में 4 से 5 बार मे बुआई के 25 बाद 20 –20 दिन के अंतराल पर डालना चाहिए ,इससे भिन्डी के फसल उत्पादन पर प्रभावी असर पड़ेगा और उत्पादन भी अच्छा होगा।

निराई एवं गुड़ाई– किसान भाइयों को वर्षा काल में भिन्डी फसल के प्रारम्भिक अवस्था में 2 से 3 बार निराई एवं गुड़ाई करनी चाहिए समयानुसार खुरपी से खेत में लगी फसल की निराई एवं गुड़ाई करना चाहिए जिससे वायु संचार बना रहे और खर पतवार न पनपने पायें।पहली निराई एवं गुड़ाई 15 से 20 दिन पर करनी चाहिए इसके बाद दूसरी निराई एवं गुड़ाई 30 से 45 दिन बाद में करनी चाहिए। खर पतवार नियंत्रण के लिए बुआई के 2 दिन बाद एवं जमाव के पहले स्टॉम्प नामक खर पतवार नाशक दवा का 3.3 लीटर प्रति हेक्टेयर 1000 लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करना चाहिए ध्यान यह रहे की खेत में नमी जरूर रहे ।

सिंचाई – ग्रीष्मकालीन भिन्डी की फसल में 10 से 12 दिन के अन्तराल पर अप्रैल माह में ,7 से 8 दिन अन्तराल पर मई और जून माह में 4 से 5 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए। वर्षाकालीन भिन्डी की फसल में नमी के कमी को देखकर सिंचाई करनी चाहिए वर्षा काल में यदि पानी अधिक समय तक खड़ा रह जाता है तो फसल पीला पड़ कर खराब हो जाता है इस लिए समुचित जल निकास की भी व्यवस्था करना जरूरी है।

फसल सुरक्षा

प्रमुख रोग

भिन्डी के रोग – पाउडरी मिल्डूयू दृ इस रोग से प्रभावित पौधों की पत्तियों पर सफेद पाउडर जैसा परत हो जाती है जिससे पत्तियों का पीला होकर झड़ना शुरू हो जाता है इसके रोक थाम के लिए घुलनशील सल्फर 0.2 प्रतिशत का करना चाहिए।

पीला मोजैक – यह रोग सफेद मक्खियों द्वारा फैलता है जो एक पौधे से दूसरे पौधे में फैलता है यह एक विषाणु जनित रोग है जो पौधों के वृद्धि को रोक देती है। इस रोग के प्रभाव से पौधों की पत्तियां और उनकी शिराएँ पीली पड़ने लग जाती हैं पत्तियां सिकुड़ जाती हैं इस रोग से बचाव के लिए रोग ग्रसित पौधे को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए तथा रासायनिक दवा एमिडाक्लोरोप्रीड की 0.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के साथ घोल बनाकर छिडकाव करके इस रोग से बचा जा सकता है। किसान भाइयों को रोग अवरोधी किस्मों जैसे पूसा ।–5,परभनी क्रांति,पी–7 एवं अर्का अनामिका को लगाना चाहिए।

भिन्डी के प्रमुख कीट– भिन्डी के फसल में तना एवं फली बेधक,जैसिड,एवं पर्ण विविल,लाल माईट जैसे कीटों का आक्रमण अक्सर देखने को मिलता है पीला शिरा मोजैक भी कीटों के द्वारा ही फैलता है। ये सभी कीट पौधों से लेकर फलियों को काफी नुकसान पंहुचाते हैं पर्ण विविल जैसे कीटों से फूलों को काफी नुकसान पंहुचता है।

जैसिड एवं सफेद मक्खी – ये कीट शिशु एवं प्रौढ़ दोनों ही अवस्था में भिन्डी के पत्तियों के रस चूसते हैं जिससे पत्तियों के रंग पीले पड़ जाते हैं और पौधा सूख जाता है । जैसिड ,सफेद मक्खी जैसे कीटों के नियंत्रण हेतु एमिडाक्लोरोप्रीड 2 मिली. प्रति 10 लीटर के हिसाब से पानी में घोल बनाकर छिडकाव करना चाहिए ।

तना एवं फल छेदक– तना एवं फल छेदक कीटों से

प्रभावित फल टेढ़े आकार के हो जाते हैं और ये कीट फलियों में छेद कर देते हैं जिससे फली खाने के योग्य नहीं रह जाते हैं। इस कीट के नियंत्रण हेतु इमामैक्कटिन बेंजोएट की 2 से 2.5 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी के हिसाब से छिडकाव करना चाहिए खेतों में 15 से 20 दिन बाद निरीक्षण करने के पश्चात् यदि लगे की कीटों की संख्या बढ़ रही है तो दूसरी दवा क्लोरेनटेरीनप्रोन की 2 मिली.की मात्रा प्रति 10 लीटर पानी में घोल बनाकर छिडकाव करने से नियंत्रण हो जाता है। इसके अतिरिक्त किसान भाई नीम तेल के 5 मिली.प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिडकाव करना चाहिए ।

लाल माईट– यह कीट भिन्डी फसल के लिए बहुत ही घातक है,ये बहुत ही छोटे होते हैं तथा इनकी संख्या भी काफी होती है जो पत्तियों पर एक ही जगह जाला बना देते हैं। इनका प्रकोप गर्मी के मौसम में अधिक होता है। इनके रोकथाम के लिए हम रासायनिक दवाओं का प्रयोग करते हैं लाल माईट जैसे कीटों के नियंत्रण हेतु एमिडाक्लोरोप्रीड 2 मिली. प्रति 10 लीटर के हिसाब से पानी में घोल बनाकर छिडकाव करना चाहिए द्य इसके अलावा अन्य रसायन जैसे डाइकोफाल 5 ई.सी. की 2 मिली.मात्रा प्रतिलीटर पानी का घोल बनाकर छिडकाव करने से माइट का नियंत्रण हो जाता है द्य कीटनाशियों का छिड़काव करने से पहले भिन्डी की फलियों को तोड़ लेना चाहिए और उन फलियों को भी तोड़ लेना चाहिए जिसमे कीट का प्रभाव हो उन्हें किसी दूर के स्थान पर दबा देना चाहिए।

समेकित कीट प्रबंधन में ट्रैप उपकरणों का महत्त्व– कीटों की निगरानी और इनके नियंत्रण के लिए कुछ उपकरण हैं जिसके माध्यम से किसान भाईयों को मदद मिल सकती है जो निम्नलिखित हैं 1– प्रकाश ट्रैप (प्रकाश प्रपंच) 2– फेरोमोन ट्रैप

प्रकाश ट्रैप (लाइट ट्रैप)– प्रकाश ट्रैप की सहायता से रात को कीटों को आकर्षित करना एवम उन्हें नष्ट करना आसान होता है प्रकाश ट्रैप से कीट आकर्षित होकर उसके चारों ओर मडराने लगते हैं और बल्ब से टकराकर कीट केरोसिन युक्त जल भरे नाद में गिर जाते हैं और मर जाते हैं। एक हेक्टेयर प्रक्षेत्र के लिए एक प्रकाश प्रपंच उचित रहता है।

फेरोमोन ट्रैप – यह एक ऐसा उपकरण है जो कीटों को अपने तरफ आकर्षित करता है इसमें इरविट लेयर फेरोमोन ट्रैप का प्रयोग होता है । इस ट्रैप में मादा पतंगों की विशेष गंध होती है इस विशेष गंध से नर पतंगों का समूह भी ट्रैप कर लिया जाता है जिससे मादा कीट अंडे देने से वंचित हो जाती है। 12 से 15 फेरोमोन ट्रैप एक हेक्टेयर में कीट निगरानी हेतु लगाना चाहिए यह फेरोमोन ट्रैप पूरे खेत में समान दूरी पर फसल से 2 फीट ऊंचाई पर लगाना चाहिए।

3. पीला चिपचिपा ट्रैप

पीला चिपचिपा ट्रैप में हानिकारक कीट जैसे तेला, सफेद मक्खियाँ आकर्षित होकर चिपक जाती है जिससे खेत में इनके उपस्थिति का पता चल जाता है उसी अनुसार हम कीटो के नियंत्रण के लिए रासायनिक दवाओं एवं विधियों का प्रयोग करते हैं।

भिन्डी फसल की तुडाई व सावधानी – भिन्डी फसल की तुडाई हर तीन या चार दिन पर करना चाहिए यदि फली तोड़ने में ज्यादा देरी करतें हैं तो फली का आकार बेढंगा और कड़ा हो जाता है। फली जब कच्चा एवं नरम अवस्था में बिल्कुल हरा दिखाई दे उस समय तुड़ाई का कार्य सर्वोत्तम होता है। सुबह का समय सबसे अच्छा होता है। भिन्डी की फसल के तुड़ाई का कार्य करने के लिए हाथ में दस्ताना पहनना जरूरी है यदि हो सके तो पूरा शरीर ढँक कर ही यह कार्य करना चाहिए जिससे शरीर में खुजली न हो सके।

उपज– भिन्डी फसल की उचित देखभाल एवं अच्छी किस्मों से 120 से 180 क्विंटल एवं संकर किस्मों से पैदावार 150 से 200 क्विंटल प्रति हेक्टेयर पैदावार लिया जा सकता है।

विपणन– फलियों को तोड़ कर जालीदार जूट की बोरियों या टोकरियों में भर कर उपर से पानी का छिड़काव करना चाहिए जिससे फली ताजा एवं हरा बाजार में पहुँच सके। यदि उचित वैज्ञानिक तकनीकी को अपनाकर खेती की जाए तो प्रति हेक्टेयर 2,00,000 से 2,50,000 रुपये तक शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

पपीते की बागवानी

जय प्रकाश, कन्हैया सिंह एवं अमित कुमार गोस्वामी

फल एवं औद्यानिक प्रौद्योगिकी संभाग
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

पपीता पोषक तत्वों से भरपूर अत्यन्त स्वास्थ्य वर्धक जल्दी तैयार होने वाला फल है, इसका उपयोग पके तथा कच्चे फल के रूप में उपयोग किया जाता है। इसका आर्थिक महत्व ताजे फलों के अतिरिक्त पपेन के कारण भी है। जिसका प्रयोग बहुत से औद्योगिक कार्यों में होता है। पपीते की खेती की लोकप्रियता दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। विश्व में पपीता उत्पादक देशों में भारत एक अग्रणी राष्ट्र है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह हमारे देश का पांचवा लोकप्रिय फल है। देश की विभिन्न राज्यों मुख्यतः आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, तेलंगाना, तमिलनाडु, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल और त्रिपुरा में इसकी खेती की जा रही है।

भूमि या मृदा

पपीता के लिए हल्की दोमट या दोमट मृदा जिसमें जल निकास अच्छा हो, अच्छी मानी जाती है। इसके लिए दोमट, हवादार भूमि का चयन करना चाहिए और मृदा का पी.एच मान 6.5–7.5 के बीच होना चाहिए।

जलवायु

यह मुख्यरूप से उष्ण जलवायु का फल है परन्तु इसे सम–शीतोष्ण जलवायु में भी उगाया जा सकता है। इसकी खेती समुद्रीय तल से 800 मीटर की ऊंचाई तक की जा सकती है। पपीते की फसल पर पाले का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके उत्पादन के लिए आदर्श तापक्रम 27–34 डिग्री सेल्सियस के बीच होना चाहिए। 40 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापक्रम और 10 डिग्री सेल्सियस से कम तापमान पपीता की बागवानी के लिए हानिकारक होता है। अधिक तापक्रम से पौधे और फल उत्पादन दोनों ही प्रभावित होते है। इसके सफल उत्पादन के लिए तुलनात्मक रूप से उच्च तापक्रम, कम आर्द्रता और पर्याप्त नमी की जरूरत है।

किस्में

पपीता में मुख्यतः पर–परागण के चलते और बीज प्रवर्धन के कारण किस्में अस्थाई हैं और एक ही किस्म के पौधों में कई बार विभिन्नता पाई जाती है। इसमें फूल आने से पहले नर और मादा पौधों का अनुमान लगाना कठिन है। इनमें कुछ बौनी प्रचलित किस्में जो देश के विभिन्न भागों में उगाई जाती हैं और जिनमें अधिक संख्या में मादा फूलों के पौधे मिलते हैं वह किस्में सघन बागवानी पद्धति के लिए उपयुक्त है। पपीते की मुख्य प्रजातियां का विवरण इस प्रकार है।

पूसा ड्वार्फः यह छोटी बढ़वार वाली द्विलिंगी किस्म है। जिसमें नर तथा मादा फूल अलग अलग पौधे पर आते हैं। फल मध्यम तथा अण्डाकार आकार के होते हैं।

पूसा नन्हाः इस किस्म का पौधा बहुत बौना होता हैं तथा गृहवाटिका के लिए अधिक उपयोगी होती है। साथ ही साथ सघन बागवानी पद्धति के लिए भी उत्तम है। इस किस्म के पौधों में रोपाई के तीन महीने बाद ही फूल एवं फल लगने लगते हैं।

सूर्याः इस किस्म का विकास भारतीय उद्यान अनुसंधान संस्थान, हैसरगट्टा बैंगलोर से किया गया है। यह एक संकर व उभयलिंगी किस्म है। फल का आकार मध्यम तथा लम्बवत गोलाकार लिए होता है तथा गूदे का रंग लाल होता है। फलों की गुणवत्ता में यह किस्म उत्तम है।

अरका प्रभातः इस किस्म का विकास भारतीय उद्यान अनुसंधान संस्थान, हैसरगट्टा बैंगलोर से किया गया है। यह एक संकर व उभयलिंगी किस्म है। फल का आकार मध्यम तथा लम्बवत गोलाकार लिए होता है तथा गूदे का रंग लाल होता है। इसकी उत्पादकता 90 किग्रा/पौधा

बैंगलोर की जलवायु में पाई गई है।

सिन्टाः फिलीपींस से विकसित इस किस्म का पौधा छोटा तथा उभयलिंगी होता है। फल का आकार मध्यम तथा गोलाकार लिए होता है। गूदे का रंग पीला होता है और सभी फल लगभग एक आकार व भार के होते हैं।

रेड लेडीः यह ताइवान से विकसित उभयलिंगी किस्म है। इसमें सभी पौधों में फलत होती हैं। फल का आकार मध्यम तथा लम्बवत गोलाकार लिए होता है। गूदे का रंग लाल होता है। यह किस्म पूरे भारत में बहुत ही लोकप्रिय है।

नर्सरी की तैयारी

पपीता के उत्पादन के लिए नर्सरी में पौधों को लगाने का तरीका व समय बहुत महत्व रखता है। प्रति हैक्टेयर पौधे तैयार करने के लिए बीज की मात्रा उभयलिंगी किस्मों में 100–120 ग्राम व द्विलिंगी किस्मों में 300–350 ग्राम प्रति हैक्टेयर रोपाई के लिए पर्याप्त होती है। उभयलिंगी किस्मों की तुलना में द्विलिंगी किस्मों के पौधे प्रत्येक गड्ढे में एक के जगह दो लगाये जाते हैं। सामान्य रूप से पपीते में एक ग्राम में 50 से 70 की संख्या में बीज आते हैं और इससे 40 से 50 की संख्या में पौध बन सकती है। बीज पूर्णरूप से पका हुआ, अच्छी तरह सूखा हुआ और शीशे की हवा बंद जार या बोतल में रखा हो तथा 6 महीने से ज्यादा पुराना न हो, उपयुक्त है। बोने से पहले बीज को 3 ग्राम केप्टान प्रति किग्रा. की दर से उपचारित करना चाहिए। ट्राइकोडरमा का प्रयोग मृदा जनित रोगों के लिए काफी प्रभावी पाया गया है। इसका प्रयोग नर्सरी के समय करना अधिक प्रभावी रहता है। वह स्थान जहां तेज धूप तथा अधिक छाया न रहे नर्सरी के लिए चुनना चाहिए। बीज लगाने के लिए 200 गेज और 20 x 15 सेमी. आकार की थैलियों जिनमें छिद्र हो की जरूरत होती है। आजकल पपीते को नर्सरी के लिए प्लास्टिक के बने ट्रे का प्रयोग बड़े स्तर पर किया जा रहा है। नर्सरी में 1:1:1:1 के अनुपात में पत्ती की खाद, रेत, गोबर और मिट्टी का मिश्रण बनाकर थैलियों में या प्लास्टिक ट्रे में भर देते हैं। पपीते में अंकुरण प्रतिशत कम होने के कारण प्रत्येक थैली में पपीते के दो बीजों को 1.5 सेमी. गहराई पर बुवाई कर देते हैं। संकर व उभयलिंगी किस्मों के लिए एक बीज पर्याप्त होता है। पर्याप्त तापक्रम होने से बीज बोने के लगभग 15–20 दिन में अंकुरित होने लगते हैं। जब इन पौधों में 4–5 पत्तियां निकल जाएं और ऊंचाई 20–25 सेमी. हो जाए। तब यह खेत में रोपाई करने योग्य हो जाते हैं। रोपाई से पहले थैलियों में लगे पौधों को धूप में रखना चाहिए, ज्यादा सिंचाई करने से जड़ सड़न वाला रोग लग जाता है। उत्तरी भारत में नर्सरी में बीज मार्च–अप्रैल (पॉली हाउस में) तथा जून से अगस्त में खुले स्थान में बोने उगाने चाहिए। प्रतिरोपण करते समय थैली के नीचे का भाग एक किनारे से काट देना चाहिए।

गड्ढ़े की तैयारी, पौध रोपण एवं पौध अन्तरणः

पपीते की सघन बागवानी के लिए पौध लगाने से पहले खेत की अच्छी तरह तैयारी करके खेत को समतल कर लेना चाहिए ताकि सिंचाई के समय जल भराव न हो। पपीता के लिए 50 x 50 x 50 सेमी. आकार के गड्ढा की खुदाई कर लेना चाहिए और प्रत्येक गड्ढे में 25 ग्राम ट्राइकोडरमा को अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद में मिलाकर डालें। इससे मृदा जनित फफूंद रोग का प्रकोप कम होता हैं। दीमक प्रभावित क्षेत्रों में क्लोरोपाइरीफास की 2 मिली. मात्रा प्रति लीटर पानी में मिलाकर गडढे को उपचारित कर लेना चाहिए। बौनी किस्मों के पौधों को 1.5 x 1.5 मीटर की दूरी पर (पूसा नन्हा, पूसा ड्वार्फ, सिन्टा और सूर्या) रोपाई करते है। इस प्रकार एक एकड़ क्षेत्र में करीब 1770 पौधे का समयोजन किया जा सकता है। मध्यम आकार वाली किस्मों (अरका प्रभात और रेड लेडी) के लिए 1.8 x 1.8 मीटर की दूरी उपयुक्त होती हैं। इस प्रकार एक एकड़ क्षेत्र में करीब 1200 पौधों की रोपाई की जा सकती है। द्विलिंगी किस्मों के पौधों को एक ही गड्ढे में 20–25 सेमी. के फासले पर दो पौधे प्रति गड्ढा लगा देते हैं। उभयलिंगी किस्मों के लिए एक पौधा ही एक गडढे में लगाना चाहिए। गहरा गड्ढ़ा बनाकर 20 किलो गोबर की सड़ी खाद को मिट्टी में मिलाकर पौधा लगाने से बीस दिन दिन पूर्व भर दें। पौधे लगाते समय गड्ढे को मिट्टी से अच्छी तरह ढ़क देना चाहिए। सिंचाई के समय पानी तने से न लगे तथा उचित जल निकास हो अन्यथा मृदा जनित फफूंद तना गलन जैसी बीमारियां पैदा करती

है। पौधे लगाने का समय नर्सरी में पौध तैयारी पर निर्भर करता है। पौधे लगाने का समय उत्तर भारत में मुख्यतः इस प्रकार है।

बसन्त ऋतु: फरवरी माह के दूसरे पखवाड़े से मार्च माह के प्रथम पखवाड़े तक।

मानसून: जून व जुलाई के समय तने तथा जड़ गलन रोग का प्रकोप अधिक होता है इसलिए उचित जल निकास का प्रबंध होना चाहिए। विषाणु जनित रोग वाहक कीटो का प्रकोप अधिक होता है।

शरद: सितम्बर के दूसरे पखवाडे– से अक्टूबर माह के दूसरे पखवाडे– तक (पाले से बचाव के लिए अंतफसल अवश्य लगाएं)

खाद एवं उर्वरक

पपीता जल्दी फल देना शुरू कर देता है। इसलिए इसे अधिक उपजाऊ भूमि की जरूरत है। पपीते के एक पौधे को वर्षभर में 250 ग्राम नत्रजन, 300 ग्राम फास्फोरस एवं 400 ग्राम पोटाश देना चाहिए। इसे 6 बराबर भागों में बांटकर प्रति 2 माह के अंतराल से देते हैं। बाजार मे मिलने वाले सूक्ष्म पोषक तत्वों के घोल को 2.5 मिली. मात्रा को 1 लीटर पानी में मिलाकर फूल आने के समय पौधों पर 25 दिन के अंतराल पर तीन बार छिड़काव करना चाहिए। इससे लगातार फूल और फल पौधों पर लगते रहते हैं।

यदि दूसरे साल भी फसल लेनी हो तो उपयुक्त मात्रा का पुनः उर्वरक डालना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रति वर्ष प्रति पौधा 20–25 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद, एक किग्रा. बोन मील और एक किग्रा. नीम की खली की जरूरत पड़ती है।

सिंचाई और निराई–गुड़ाई

पानी की कमी तथा निराई–गुड़ाई न होने से पपीते के उत्पादन पर बहुत बुरा असर पड़ता है। उत्तर भारत में अप्रैल से जून तक सप्ताह में दो बार तथा जाड़े में 15 दिन के अंतर पर सिंचाई करनी चाहिए। दक्षिण भारत की जलवायु में जाड़ों में 10–12 दिन तथा गर्मी में 6 दिन के अंतर पर पानी देना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि पानी तने को छूने न पाए अन्यथा पौधे में तना गलने की बीमारी लगने का अंदेशा रहता है। इसलिए तने के आस–पास मिट्टी ऊंची रखनी चाहिए। पपीता का बाग साफ सुथरा रहे इसके लिए प्रत्येक सिंचाई के बाद थालों के चारों तरफ हल्की गुड़ाई अवश्य करनी चाहिए। अच्छी उपज तथा गुणवत्ता वाले फल प्राप्त करने के लिए पपीता की बागवानी टपक सिंचाई पद्धति अपनाकर करनी चाहिए।

पाले से पौधों की रक्षा

पौधे को पाले से बचाना बहुत आवश्यक है। इसके लिए नवम्बर के अंत में तीन तरफ से घास–फूंस से अच्छी प्रकार ढ़क दें एवं पूर्व–दक्षिण दिशा में खुला छोड़ दें। बाग के चारों तरफ बड़े पौधों वाली फसलों को लगाकर तेज गर्म और ठण्डी हवा से बचाव हो जाता है। जनवरी के प्रथम सप्ताह में समय–समय पर धुआं कर देना चाहिए। सघन बागवानी में सर्दी और पाले आदि का प्रभाव कम पड़ता है।

प्रमुख कीट एवं रोग

प्रमुख रूप से किसी कीड़े से नुकसान नहीं होता है परन्तु विषाणु रोग फैलाने में सफेद मक्खी, माहू आदि सहायक होते हैं। पपीते में लगने वाले रोग इस प्रकार हैं।

तना तथा जड़ गलन रोग

इसमें भूमि की सतह के पास तने का ऊपरी छिलका पीला होकर गलने लगता है और जड़ भी गलने लगती है। पत्तियां सूख जाती हैं और पौधा मर जाता है। इसके उपचार के लिए जल निकास में सुधार और रोग ग्रसित पौधों को तुरन्त उखाड़कर फेंक देना चाहिए। तने के सहारे पौधों की जड़ों पर रीडोमिल 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर डालने से काफी रोकथाम होती है। ट्राइकोडरमा का प्रयोग करने से पीथीयम व फाइटोफ्थोरा फफूंद से होने वाले रोगों का प्रकोप काफी कम पाया गया है।

डैम्पिंग ऑफ : आर्द्र पतन

बीज बोने के पहले फफूंदीनाशी से अवश्य उपचारित करें। पपीता के पौधों में पानी लगने से फफूंद की बीमारियां बहुत लगती है। नम मिट्टी में नर्सरी में ही छोटे पौधे नीचे से गलकर मर जाते हैं। इससे बचने के लिए बीज बोने से

पहले बीज क्यारी को 2.5 प्रतिशत फार्मेडिल्डहाइड घोल से उपचारित करना चाहिए। प्रभावित पौधे को उखाड़कर जला दें या मिट्टी में दबा देना चाहिए।

विषाणु रोग

इस समय समस्त देश में विषाणु जनित रोगों से पपीते की उत्पादकता व क्षेत्र फैलाव पर बुरा प्रभाव पड़ा है। पपीते की सभी प्रजातियां इस रोग से प्रभावित होती है। विषाणु से पपीता में होने वाले रोग में मोजेक तथा पर्ण कुंचन प्रमुख है। पर्ण कुंचन विषाणु जनित रोग का उत्तर भारत में मुख्यतः प्रकोप पाया जाता है।

पर्ण कुंचन

यह रोग जेमिनी विषाणु के कारण होता है। इस रोग के लक्षण केवल ऊपर की नई पत्तियों पर दिखाई देते हैं। पत्तियां नीचे की तरफ मुड़ जाती है तथा एक प्यालेनुमा आकृति बना लेती है। पर्णवृंत टेढ़े–मेढ़े हो जाते हैं। इस रोग के प्रकट होने के बाद पौधे में वृद्धि बन्द हो जाती है। यह रोग सफेद मक्खी (बेमिसिया टैबेकाई) से फैलता है। सफेद मक्खी जून से लेकर अगस्त माह तक सर्वाधिक सक्रिय रहती है। इस मक्खी को रोग फैलाने से रोकने के लिए इमिडियोक्लोरोपिड की 3 मिली. मात्रा को 10 लीटर पानी में मिलाकर 15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करना चाहिए। रोगग्रसित पत्तियों व पौधों को बाग से निकालकर मिट्टी में दबा देना चाहिए। परिपोषी पाधे जैसे मिर्च, टमाटर, तम्बाकू को बागों के पास नहीं लगाना चाहिए।

पपाया रिंग स्पॉट वायरस

पपीता फसल में पपाया रिंग स्पॉट वायरस नामक बीमारी का प्रकोप काफी अधिक देखने को मिल रहा है। पपीते के पौधे में फूल आने से पहले यदि यह बीमारी लग जाएं तो पौधे में फल का लगना लगभग असंभव सा हो जाता है। यह विषाणु रोग फसल की उत्पादकता को बहुत ही बुरे तरह से प्रभावित करती है और बीमारी पौधे में आने के बाद रोकथाम संभव नहीं है। अतः इस बीमारी की रोकथाम का प्रमुख सिद्धांत बचाव ही इलाज है। इस रोग के प्रकोप से अपने बाग को बचाने के लिए किसान 2 प्रतिशत नीम का तेल जिसमे 0.5 मिलीलीटर स्टीकर मिला हो उसका छिड़काव एक–एक महीने के अंतर पर पहले से आठवें महीने तक करते रहें। साथ ही उच्च गुणवत्ता के फल व पपीता के पौधों में रोग रोधी गुण पैदा करने के लिए पोटैशियम नाइट्रेट 10 ग्राम, जिंक सल्फेट 6 ग्राम एवं बोरॉन 4 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर एक–एक महीने के अंतर पर पहले महीने से आठवें महीने तक छिड़काव करते रहे। इसके अतिरिक्त, खेत के किनारे मक्का या ज्वार या बाजरा की तीन से पांच कतारें लगाएं ताकि इस बीमारी को फैलाने वाले माहू (एफिड) कीट की पहुँच पपीते के पौधों तक कम से कम हो जाए।

फल तुड़ाई और उपज

उष्ण प्रदेशीय जलवायु में जाड़े और गर्मी के तापमान में अधिक अंतर नहीं होता है और आर्द्रता भी साल भर रहती है। इस जलवायु में पपीता साल भर फलता फूलता है। लेकिन उत्तर भारत में यदि रोपाई जून–जुलाई तक किया जाए तो अगली बंसत ऋतु तक पौधे फूलने लगते हैं और अप्रैल–मई या बाद में लगे फल सितम्बर–अक्टूबर में पकने लगते हैं। यदि फल कीटाणुरहित सुई के खरोंच मरने से लेटेक्स (दूध के रंग का द्रव) पानी की तरह निकलने निकलने लगे लेकिन फल की सतह पर ही रूक जाए और गिरे न तो, ऐसे परिपक्व पपीता फल तब तोड़ने योग्य होते हैं। सामान्य रूप से रोपाई के 11–15 महीने बाद फलों की तुड़ाई की जा सकती है। अच्छी देखरेख करने पर टपक सिंचाई पद्धति के साथ प्रति पौधे से 40–50 किग्रा. उपज मिल जाती है।

शून्य लागत प्राकृतिक खेती

कमल गर्ग[1] एवं पिंकी यादव[2]

[1]सस्य विज्ञान संभाग, भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली–110012
[2]सस्य विज्ञान विभाग, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)–313001

जैविक खेती, जीव–गति की खेती आदि सभी नवप्रवर्तनों में शून्य लागत प्राकृतिक खेती (जेडबीएनएफ), किसानों की समस्या के समाधान के रूप में लोकप्रियता हासिल कर रही है। वर्तमान में 50 लाख से अधिक किसान खेती की इस प्रणाली का प्रयोग कर बंजर भूमि को उपजाऊ भूमि में परिवर्तित कर रहे हैं। जीरो बजट प्राकृतिक खेती के तहत किसान केवल उनके द्वारा बनाई गई खाद और अन्य चीजों का प्रयोग खेती के दौरान करते हैं। जीरो बजट प्राकृतिक खेती करने में किसी भी प्रकार के रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का इस्तेमाल करने की जरूरत नहीं पड़ती है।

कैसे शुरू हुई भारत में जीरो बजट प्राकृतिक खेतीः–

भारत में इस खेती की शुरूआत सबसे पहले दक्षिण भारत के कर्नाटक राज्य में हुई थी और धीरे धीरे ये खेती भारत के अन्य राज्य में भी प्रसिद्ध होने लगी है। इस खेती की शुरूआत कर्नाटक राज्य में सुभाष पालेकर ने स्टेट फार्मर्स एसोसिएशन कर्नाटक राज्य रैथा संघ, और मेंबर ऑफ ला वाया कम्पेसिना के साथ मिलकर की थी। इस वक्त कनार्टक के करीब एक लाख किसानों ने इस खेती की तकनीक को अपना लिया है और अनुमान है कि आने वाले समय में ये संख्या और अधिक हो जाएगी।

शून्य लागत प्राकृतिक खेती के मुख्य अवयवः–

1. जीवामृत

जिवामिता या जीवनमूर्ति की मदद से जमीन को पोषक तत्व मिलते हैं और ये एक उत्प्रेरक एजेंट के रूप में कार्य करता है, जिसके वजह से मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की गतिविधि बढ़ जाती है और फसलों की पैदावार अच्छे से होती है। इसके अलावा जीवामृत की मदद से पेड़ों और पौधों को कवक और जीवाणु संयंत्र रोग होने से भी बचाया जा सकता है।

जीवामृत बनाने की विधि– एक बैरल में 200 लीटर पानी डालें और उसमें 10 किलो ताजा गाय का गोबर, 5 से 10 लीटर वृद्ध गाय का मूत्र, 2 किलो दाल का आटा, 2 किलो ब्राउन शुगर और मिट्टी को मिला दें. ये सब चीजे मिलाने के बाद आप इस मिश्रण को 48 घंटों के लिए छाया में रख दें। 48 घंटों तक छाया में रखने के बाद आपका ये मिश्रण इस्तेमाल करने के लिए तैयार हो जाएगा।

किस तरह से इस्तेमाल करें इस मिश्रण को– एक एकड़ जमीन के लिए आपको 200 लीटर जीवामृत मिश्रण की जरूरत पडेगी और किसान को अपनी फसलों को महीने में दो बार जीवामृत का छिड़काव देना होगा। किसान चाहें तो सिंचाई के पानी में इसे मिलाकर भी फसलों पर छिड़काव दे सकते हैं।

2. बीजामृत

इस उपचार का इस्तेमाल नए पौधे के बीज रोपण के दौरान किया जाता है और बीजामृत की मदद से नए पौधों की जड़ों को कवक, मिट्टी से पैदा होने वाली बीमारी और बीजों की बीमारियां से बचाया जाता है। बीजामृत को बनाने के लिए गाय का गोबर, एक शक्तिशाली प्राकृतिक कवकनाश, गाय मूत्र, एंटी–बैक्टीरिया तरल, नींबू और मिट्टी का इस्तेमाल किया जाता है। यह मूल रूप से पानी (20 लीटर), गोबर (5 कि.ग्रा.), मूत्र (5 लीटर), चूना (50 ग्राम) और सिर्फ एक मुट्ठी मिट्टी से बना है। बीजामृता एक बीज उपचार है, जो तरुण जड़ों को कवक के साथ–साथ मृदाजनित और बीज जनित रोगों से बचाने में सक्षम है।

किस तरह से इस्तेमाल करें इस मिश्रण को– किसी भी फसल के बीजों को बोने से पहले उन बीजों पर आप बीजामृत अच्छे से लगा दें और ये लगाने के बाद उन बीजों को कुछ देर सूखने के लिए छोड़ दें। इन बीजों पर लगा

बीजामृत का मिश्रण सूख जाने के बाद आप इनको जमीन में बो सकते है।

3. आच्छादन– मल्चिंगः

मिट्टी की नमी का संरक्षण करने के लिए और उसकी प्रजनन क्षमता को बनाए रखने के लिए मल्चिंग का सहारा लिया जाता है। मल्च प्रक्रिया के अंदर मिट्टी की सतह पर कई तरह के मेटेरियल लगाए जाते हैं ताकि खेती के दौरान मिट्टी को गुणवत्ता को नुकसान ना पहुंचे। मल्चिंग तीन प्रकार की होती हैं जो कि मिट्टी मल्च, स्ट्रॉ मल्च और लाइव मल्च है–

मिट्टी मल्च– खेती के दौरान मिट्टी की ऊपरी सतह को कोई नुकसान ना पहुंचाये इसलिए मिट्टी मल्च का प्रयोग किया जाता है और मिट्टी के आसपास और मिट्टी को इक्ट्ठा करके रखा जाता है, ताकि मिट्टी की जल प्रतिधारण क्षमता को और अच्छा बनाया जा सके।

स्ट्रॉ मल्च– स्ट्रॉ (भूसा) सबसे अच्छी मल्च सामग्री में से एक है और भूसे मल्च का उपयोग सब्जी के पौधों की खेती में अधिक किया जाता है। कोई भी किसान चावल के भूसे और गेहूं के भूसे का उपयोग सब्जी की खेती के दौरान कर अच्छी सब्जियों की फसल पा सकता है और मिट्टी की गुणवत्ता को भी सही रख सकता है।

लाइव मल्चिंग– लाइव मल्चिंग प्रक्रिया के अंदर एक खेत में एक साथ कई तरह के पौधे लगाए जाते हैं और ये सभी पौधे एक दूसरे पौधों की बढ़ने में मदद करते हैं। उदाहरण के लिए, कॉफी और लौंग के पेड़ को बढ़ने के लिए पूर्ण सूर्य प्रकाश की जरूरत नहीं पड़ती है। वहीं गेहूं, गन्ना, बाजरा, रागी और मक्के के पौधे केवल पूर्ण सूर्य प्रकाश में ही बड़े हो सकते हैं। इसलिए लाइव मल्चिंग प्रक्रिया के अंदर ऐसे दो पौधे को एक साथ लगा दिया जाता है जिनमें से कुछ ऐसे पौधे होते हैं जो कि कम धूप लेने वाले पौधों को अपनी छाया प्रदान करते हैं और ऐसा होने से पौधा का अच्छे से विकास हो पता है।

4. व्हापासाः

सुभाष पालेकर द्वारा लिखी गई किताबों के अंदर कहा गया है कि पौधों को बढ़ने के लिए अधिक पानी की जरूरत नहीं होती है और पौधे व्हापासा यानी भाप की मदद से भी बढ़ सकते हैं। व्हापासा वह स्थिति होती है जिसमें हवा में पानी के अणु हैं और पानी के अणु मिट्टी में मौजूद होते है और इन दोनों अणु की मदद से पौधे का विकास हो जाता है।

कीट प्रबंधन की संरचना और नियंत्रणः

एग्रीअस्त्र– स्थानीय गाय का 10 लीटर मूत्र और एक कि.ग्रा. तम्बाकू, 500 ग्राम हरी मिर्च, 500 ग्राम स्थानीय लहसुन, 5 कि.ग्रा. नीम के पत्तों के गूदे (मूत्र में संदलित) से बना है। छिड़काव के लिए, 100 लीटर पानी में 2 लीटर ब्रह्मास्त्र लिया जाता है। यह पर्ण लपेट (लीफ रोलर), तनाभेदक (स्टेम बोरर), फलभेदक (फ्रूट बोरर), फलीभेदक (पॉडबोरर) जैसे कीटों के प्रति प्रभावी है।

ब्रह्मास्त्र– यह नीम, कस्टर्ड सेब, लैंटर्न कैमेलिया, अमरूद, अनार, पपीते और सफेद धतूरा के पत्तों को संदलित और उबालकर बनाया जाता है। इसका उपयोग सभी चूसने वाले कीटों, फलभेदक कीटों आदि को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है।

नीमास्त्र– यह स्थानीय गोमूत्र (5 लीटर), गोबर (5 कि.ग्रा) और नीम के पत्तों और नीम की लुग्दी (5 कि.ग्रा) से बनता है, जो 24 घंटे के लिए किण्वित होता है। इसका उपयोग चूसने वाले कीटों और मिलीबग को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है।

जीरो बजट प्राकृतिक खेती के फायदे :–

कम लागत लगती है– जीरो बजट प्राकृतिक खेती तकनीक के जरिए जो किसान खेती करते हैं उन्हें किसी भी प्रकार के केमिकल और कीटनाशकों तत्वों को खरीदने की जरूरत नहीं पड़ती है और इस तकनीक में किसान केवल अपने द्वारा बनाई गई चीजों का इस्तेमाल केमिकल की जगह करते हैं, जिसके चलते इस प्रकार की खेती करने के दौरान कम लागत लगती है।

जमीन के लिए फायदेमंद– केमिकल और कीटनाशकों तत्वों का इस्तेमाल खेती के दौरान इसलिए किया जाता है ताकि फसलों में किसी भी प्रकार का कीड़ा ना लग

सके और फसल का अच्छे से विकास हो सके। हालांकि जब किसानों द्वारा केमिकल और कीटनाशकों तत्वों का छिड़काव फसलों पर किया जाता है, तो इनके कारण जमीन के उपजाऊपन को नुकसान पहुंचता है और कुछ समय बाद जमीन पर फसलों की पैदावार अच्छे से नहीं हो पाती है। मगर जीरो बजट प्राकृतिक खेती तकनीक का इस्तेमाल किसानों द्वारा खेती के दौरान किया जाए तो इसकी मदद से जमीन का उपजाऊपन बना रहता हैं और फसलों की पैदावार अच्छी होती है।

मुनाफा ज्यादा होता है– जीरो बजट प्राकृतिक खेती के तहत केवल खुद से बनाई कई खाद का इस्तेमाल किया जाता है और ऐसा होने से किसानों को किसी भी फसल को उगाने में कम खर्चा आता है और कम लागत लगने के कारण उस फसल पर किसानों को अधिक मुनाफा होता है।

अच्छी पैदावार होती है– जीरो बजट प्राकृतिक खेती के तहत जो फसल उगाई जाती है उसकी पैदावार काफी अच्छी होती है। इसलिए अगर आपको लग रहा है कि जीरो बजट प्राकृतिक खेती के तहत खेती करने से फसलों की पैदावार कम होगी तो ऐसा बिल्कुल नहीं है।

निष्कर्ष: शून्य लागत प्राकृतिक खेती, बीज, उर्वरक और पादप सुरक्षा रसायनों की लागत की बचत के लिए पर्याप्त है। इस नई प्रणाली ने किसानों को कर्ज के जाल से मुक्त किया है और उन्हें खेती को आर्थिक रूप से व्यवहार्य उद्यम बनाने के लिए आत्मविश्वास की एक नई भावना प्रदान की है। जीरो बजट प्राकृतिक खेती के प्रसिद्ध होने के कारण अब हमारे देश में केमिकल्स का इस्तेमाल खेती के दौरान धीरे धीरे बंद होने लगा है। कई राज्य जीरो बजट प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने में भी लगे हुए हैं, ताकि उनके राज्य के किसान भी केमिकल्स की जगह प्राकृतिक चीजों का इस्तेमाल कर खेती करने के लिए प्रोत्साहित हों सकें। इस वक्त हमारे देश के कुछ राज्यों द्वारा जीरो बजट प्राकृतिक खेती को अपना लिया गया है और आने वाले समय में उम्मीद है कि ये खेती भारत के पूरे राज्यों में भी की जाने लगेगी।

कृषि में ड्रोन की बढ़ती भूमिका

पिंकी यादव[1], कमल गर्ग[2] एवं सोनल आठनेरे[3]

[1,3]सस्य विज्ञान विभाग, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)–313001
[2]सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली–110012

भारत द्वारा हरित क्राति के माध्यम से खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता का लक्ष्य प्राप्त कर विगत काल में महत्वपूर्ण जीत हासिल की थी। यह सफलता किसानों द्वारा विभिन्न आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकियों जैसे कि उन्नत किस्म के बीज, मशीनों आदि के अपनाने से ही संभव हो पाई थी। भविष्य में वैज्ञानिक तकनीकियों में निरंतर अपेक्षित बदलावों की आवश्यकता है ताकि बढ़ती जनसंख्या के लिये पर्याप्त खाद्यान्न के उत्पादन के लक्ष्य को समय रहते प्राप्त किया जा सके। ड्रोन एक ऐसा मानव रहित विमान है, जिसे दूर से ही नियंत्रित तरीके से उड़ाया जा सकता है। इसके खेती में प्रयोग की अपार संभावनाएं हैं। ड्रोन का उपयोग खेती में निम्नलिखित रूपों में हो सकता हैः–

मृदा विश्लेषण

फसल चक्र के शुरूआती दौर से ही ड्रोन फसल उत्पादन प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। खेत की मृदा का त्रिआयामी (थ्री. डी.) मानचित्र भी ड्रोन की सहायता से बनाया जा सकता है। खेत के विभिन्न खंडों में मृदा के तत्वों के स्तर की जानकारी को वैश्विक स्थान निर्धारण प्रणाली बिन्दु (जी.पी.एस. पॉइंट) के साथ मिलाकर यदि त्रिआयामी मानचित्र की रूपरेखा तैयार की जाये तो तत्वों की विभिन्नता के आधार पर उर्वरक का छिड़काव किया जा सकता है। इसके साथ–साथ यदि मृदा की नमी का स्तर भी इसी त्रिआयामी मानचित्र में विलय कर दिया जाये तो भविष्य में पड़ने वाली सिंचाई की आवश्यकता की गणना करके बताया जा सकता है। इस तरह उचित प्रबंध करके कृषि उत्पादन लागत को कम किया जा सकेगा। इस तरह का प्रयोग अफ्रीका महाद्वीप में फसल की पैदावार में सुधार करने वाले डिजिटल मानचित्रों को तैयार करने में हो रहा है।

फसल स्वास्थ्य मूल्यांकन

बुआई के बाद पौधा वृद्धि के क्रमवार चरणों जैसे अंकुरण, पत्तों व टहनियों के विकास, फूलों के विकास से होकर गुजरता हुआ परिपक्वता के चरण तक पहुंचता है। इन विभिन्न चरणों में पौधे के विकास की जांच किसानों को निश्चित अंतराल में करते रहना पड़ता है। यदि खेत का क्षेत्रफल बड़ा हो तो यह किसानों के लिये मेहनत और थकान भरा कार्य होता है। इस स्थिति में ड्रोन द्वारा छायाचित्रों के माध्यम से फसलों का निश्चित समय अंतराल में निरीक्षण किया जा सकता है। पौधे में अपेक्षित परिवर्तन के विपरीत कोई लक्षण नजर आता है तो उसे पहचान कर दूर करने के संभावित उपायों का प्रयोग समय रहते किया जा सकता है।

मवेशियों व जंगली जानवरों से फसल का बचाव

किसानों को अन्न उत्पादन में हर कदम पर परेशानियों का सामना करना पड़ता है। मवेशी व जंगली जानवर जैसे हाथी, नीलगाय आदि फसलों की बर्बादी करते हैं। इससे किसानों को रात–रात भर जागकर खेतों की रखवाली करनी पड़ती है। इन जंगली जानवरों की निगरानी ड्रोन में थर्मल कैमरों को लगाकर की जा सकती है। इससे पशुओं के आने–जाने के रास्ते आदि पर नजर रखी जा सकती है। समय रहते किसानों को आगाह किया जा सकता है। अफ्रीकी देशों जैसे युगांडा, तंजानिया और केन्या में ड्रोन का उपयोग किसान के मवेशियों को जंगली खतरनाक जानवरों से सुरक्षित रखने के लिए किया जा रहा है।

परागकों का छिड़काव

जलवायु परिवर्तन, अत्यधिक मात्रा में कीटनाशकों का प्रयोग, रोगजनक परजीवियों का संक्रमण, सिकुड़ते खेत, घटते जंगल और घटती जैव विविधता के कारण, मधुमक्खियों आदि परागणकर्ताओं के जीवन के लिए खतरे की घंटी है। यदि ऐसा ही रहा तो परागण क्रिया के लिए कृत्रिम माध्यमों का प्रयोग करना जरूरी हो जायेगा। कृत्रिम रूप से परागण के लिए सूक्ष्म आकार के ड्रोन का प्रयोग किया जा सकता है। इस तरह का प्रयोग जापान में वैज्ञानिकों द्वारा फूलों में परागण के लिए किया गया है।

सिंचाई व हाइड्रोजेल का छिड़काव

हाइपरस्पेट्रल या थर्मल सेंसर वाला ड्रोन सूखे खेत के खंडों को पहचानकर उन पर पानी या हाइड्रोजेल का छिड़काव कर सकता है। इससे फसलों को सूखने से बचाया जा सकता है। इस प्रकार खेत की मृदा जलधारण क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

फसल अवशेषों के अपघटन के लिए जैविक रसायनों का छिड़काव

फसलों के अवशेष महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन हैं। ये न केवल आगामी फसल के लिए पोषक तत्वों के स्रोत हैं बल्कि मृदा, पानी और वायु की बेहतर गुणवत्ता बनाये रखने में भी कारगर होते हैं। वर्तमान समय में अवशेषों का निपटारा एक बड़ी समस्या बन गया है। इसके परिणामस्वरूप किसान अवशेषों को जलाने को मजबूर हो जाते हैं। फसल के अवशेषों का बड़े पैमाने पर संग्रह और ढोना खर्चीला व बोझिल है। इसलिए अवशेष प्रबंधन अब भी एक आर्थिक रूप से व्यावहारिक विकल्प नहीं है। फसल अवशेषों के अपघटन को जैवीय तरल पदार्थों के छिड़काव से त्वरित किया जा सकता है। इस छिड़काव के लिए ड्रोन का प्रयोग एक सटीक विकल्प हो सकता है।

तरल व ठोस उर्वरकों का छिड़काव

फसलीय पौधों के पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार के उर्वरकों का छिड़काव मानवीय तरीके से या मशीनों के माध्यम से किया जाता है। पौधे, उर्वरकों को मृदा से जड़ों द्वारा एवं ऊपरी छिड़काव करने पर पत्तियों द्वारा अवशोषित कर लेते हैं। ऐसी फसलें जिनकी अधिक ऊंचाई होती है उनमें हाई क्लीयरेंस वाली मशीनों व ट्रैक्टरों का प्रयोग करना पड़ता है। इस तरह की मशीनों में असंतुलन की समस्या होती है। इसमें दुर्घटना की प्रबल आशंका बनी रहती है। ड्रोन को किसी भी नियंत्रित ऊंचाई पर उड़ाया जा सकता है। इसलिए फसल की ऊंचाई ड्रोन के लिए कोई समस्या नहीं होती और पौधों को यांत्रिक क्षति (मैकेनिकल डैमेज) से भी बचाया जा सकता है। ड्रोन का प्रयोग तरल और ठोस दोनों उर्वरकों के छिड़काव में किया जा सकता है।

कीटनाशक व खरपतवारनाशक रसायनों का छिड़काव

ड्रोन का प्रयोग खेत में निश्चित मात्रा में कीटनाशकों के छिड़काव के लिये किया जा सकता है। इस प्रकार कीटनाशकों का छिड़काव पारंपरिक मशीनों की तुलना में लगभग पांच गुना तेजी से किया जा सकता है। इससे किसानों को कीटनाशक के संपर्क में आने से रोका जा सकता है। चीन ने ड्रोन का प्रयोग कीटनाशकों के छिड़काव के लिए आरंभ कर दिया है। हमारे देश में भी ड्रोन द्वारा कीटनाशकों के छिड़काव पर अनुसंधान बड़े व्यापक रूप में हो रहा है। विकसित कीटनाशक छिड़कावक ड्रोन चार कि.ग्रा. का वजन उठाने की क्षमता रखता है। इसकी उड़ान क्षमता 10 मिनट की है। यह एक उड़ान में लगभग 0.07 हैक्टर के क्षेत्र में छिड़काव कर सकता है। ड्रोन कृषि प्रबंधन के संचालन के लिए पारंपरिक हवाई वाहनों की अपेक्षा, उच्च परिशुद्धता और कम ऊंचाई की उड़ान भरकर छोटे आकार के खेतों में कार्य करने की क्षमता रखता है। ड्रोन, खेतों के हालात जानने के लिए डाटा एकत्रण और उनका विश्लेषण करने व ऐसे कार्यों में विभिन्न अवयवों व घटकों के उचित और सटीक रूप से प्रबंधन में सहायक सिद्ध हो सकता है। ऐसी परिस्थितियां जहां परंपरागत मशीनों का उपयोग करना चुनौतीपूर्ण है, उदाहरण के लिए गीले धान का खेत, गन्ना, मक्का व कपास की फसल, नारियल और चाय बागान, बागवानी इत्यादि में ड्रोन की उपयोगिता बहुत महत्वपूर्ण व उपयोगी हो सकता है।

टेक्नोलॉजी के विकास के साथ–साथ, ड्रोन के कल–पुर्जे सस्ते और दक्षपूर्ण होंगे। इनसे लंबे अंतराल के लिए हवा में सस्ती उड़ान भरी जा सकेगी। इनका उपयोग कृषि प्रबंधन में आर्थिक रूप से भी फायदेमंद होगा। कृषि कार्यों में मशक्कत और इसे कम आमदनी का जरिया मानकर युवा पीढ़ी का खेती से मोह भंग हो रहा है। ये अच्छी सुख–सुविधाओं और ऊंची पगार की नौकरियों के लिए शहरों की ओर विस्थापित हो रहे हैं। ड्रोन नई तकनीकी से परिपूर्ण होने के कारण युवा पीढ़ी को अवश्य ही आकर्षित करेगा और खेती की तरफ कदम बढ़ाने के लिये प्रोत्साहित करेगा। इसकी भविष्य में अति आवश्यकता है। इस तरह बहुआयामी क्षमताओं से परिपूर्ण ड्रोन कृषि उत्पादन में प्रबंधन के लिए बहुपयोगी और लाभप्रद साबित होगा। ड्रोन पर भारत के साथ–साथ कई अन्य देशों में गहन अनुसंधान लगातार जारी है। इसको कृषि के विभिन्न कार्यों में दक्षता व सरलता से प्रयोग में लाया जा सकेगा। वह दिन दूर नहीं जब ड्रोन का रिमोट किसान के हाथ में होगा और मोबाइल की तरह इसे अपने जीवन में तेजी से अपनाकर इससे भरपूर फायदे के लिए खेतों पर चलाते हुए नजर आयेंगे।

लेखकों से...

1. अपने तकनीकी एवं लोकप्रिय लेख हिन्दी में टाइप करवाकर भेजें।
2. रचना पृष्ठ के एक ओर उचित हाशिया और पंक्तियों के बीच स्थान छोड़कर सम्पादक, प्रसार दूत के पास यथा समय भेजें।
3. वर्ष 2015 से प्रसार दूत का अंक त्रैमासिक किया गया है। लेखकों से अनुरोध है कि प्रथम अंक के लिए प्रकाशनार्थ सामग्री 30 जनवरी, द्वितीय अंक 30 अप्रैल, तृतीय अंक 31 जुलाई तथा चतुर्थ अंक 31 अक्तूबर तक अवश्य भेज दें।
4. तकनीकी पर दी गई जानकारी की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी। रचना को प्रकाशित करने या न करने का पूरा अधिकार सम्पादक मंडल को होगा।

प्रसार दूत का प्रकाशन समय

प्रथम अंक मार्च, द्वितीय अंक जून, तृतीय अंक सितम्बर और चतुर्थ अंक दिसम्बर में प्रकाशित होगा।

वार्षिक शुल्क 80/- मनीऑर्डर द्वारा भेजें।

शुल्क और सामग्री भेजने एवं पत्रिका मंगवाने का पता

प्रभारी अधिकारी

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

फोन: 011-25841670, 25846233, 25841039, 25803600

पूसा एग्रीकॉम: 1800 11 8989 (नि:शुल्क)

पाठकों से...

प्रसार दूत में प्रकाशित किसी भी तकनीकी के विषय में अंश और समाधान हेतु आपके पत्रों का स्वागत है। विषयों पर अधिक जानकारी के लिए लेखक से सीधे भी सम्पर्क कर सकते हैं।

किसानों से...

यदि आपकी खेती व पशु-पालन संबंधी कोई विशेष समस्या है, तो लिखकर भेजें। हम प्रसार दूत के माध्यम से उसका समाधान आप तक पहुंचाएंगे।

अन्त में ...

आपकी खुशहाली ही हमारी सफलता है।

प्रो. एम एस स्वामीनाथन पुस्तकालय

निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012 द्वारा प्रकाशित तथा

मैसर्स एम एस प्रिंटर्स, सी-108/1 बैक साइड नारायणा इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028, द्वारा मुद्रित

फोन: 7838075335, 9899355565, 9899355405,